कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर काका साहब खाडिलकर के नाम से विशेष प्रसिद्ध थे। एक महान् देशभक्त के रूप में आज भी उनका पर्याप्त सम्मान है। मराठी नाट्य-सृष्टि में उन्होंने बहुमूल्य कार्य किया। मराठी नाट्य प्रेमियों ने अत्यन्त स्नेह भाव से उन्हें 'नाट्याचार्य' की पदवी से विभूषित किया।

कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर एक प्रसिद्ध पत्रकार भी थे। महाराष्ट्र में आधुनिक पत्रकारिता की नींव उन्हीं ने डाली थी। खाडिलकर श्रेष्ठ चितक तथा वैदिक साहित्य के अभ्यासक थे।

कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर सादगी, सदाचार और ईमानदारी, देशभक्ति, स्वाभिमान व नेकी, इन गुणों की प्रत्यक्ष मूर्ति ही थे।

इस पुस्तिका के लेखक नारायण कृष्ण शनवारे ने मराठी नाट्य-सृष्टि पर विशेष शोधकार्य किया है। महाराष्ट्र की राजनीतिक हलचल का मराठी नाट्यसृष्टि पर प्रभाव (सन् '1843 से 1947') उन्होंने शोध प्रबन्ध लिखा है।

इस पुस्तिका में आपने मराठी नाट्य-सृष्टि में खाडिलकर के बहुमूल्य योगदान की समीक्षा तथा उनके व्यक्तित्व का चित्रण पाठकों के सामने रखा है।

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर

नारायण कृष्ण शनवारे

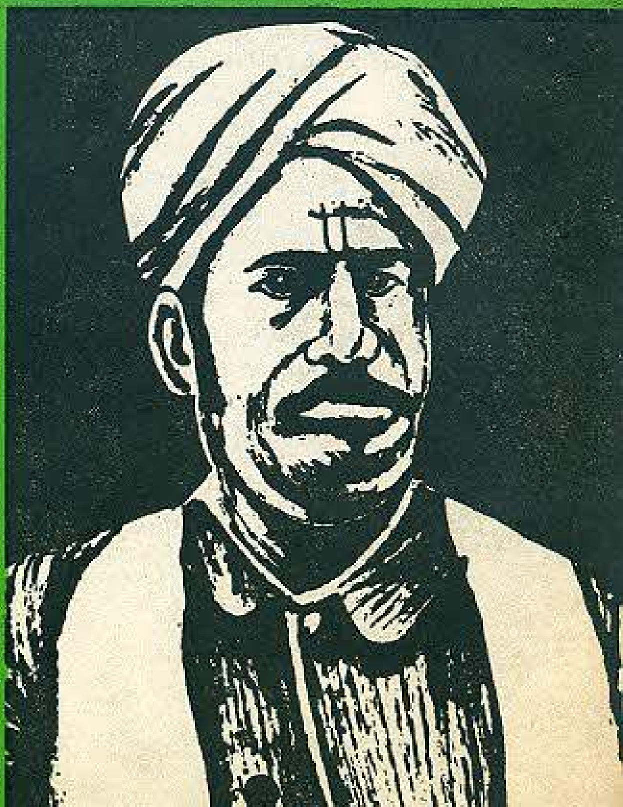

भारतीय
साहित्य के
निर्माता

कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर

भारतीय साहित्य के निर्माता

कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर

लेखक
नारायण कृष्ण शनवारे

अनुवादिका
अरुणा नारलीकर

The rates of the Sahitya Akademi publications have been increased w.e.f. 1 May 1992 vide Govt. of India letter No. JS(K)/91-545 dated 11 February 1992.

साहित्य अकादेमी

Krishnaji Prabhakar Khadilkar : Hindi translation by Aruna Narlikar of Narayan Krishna Shanware's Marathi monograph *Natyacharya Khadilkar*. Sahitya Akademi, New Delhi (1984),

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1984

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता 700 029
29, एलडाम्स रोड (द्वितीय मंज़िल), तेनामपेट, मद्रास 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

मुद्रक
स्वतंत्र भारत प्रेस,
दिल्ली 110 006

अनुक्रम

प्रारंभ	7
देशभक्त (तिलक युग)	13
देशभक्त (गांधी युग)	28
नाट्याचार्य	37
पत्रकार	54
वक्ता	72
दार्शनिक	78
व्यक्ति तथा गृह-जीवन	83
उपसंहार	95
सूची	97

प्रारंभ

महाराष्ट्र में कृष्णा नदी के किनारे बसे सांगली शहर में, दिनांक 25 नवम्बर, 1872 ई० को महाराष्ट्र के महान् नाटककार कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर का जन्म हुआ। सांगली अंग्रेजों के समय में एक छोटी-सी रियासत थी।

खाडिलकर के पूर्वज कोंकण प्रदेश से पेशवाओं के राज्य पूना तथा अन्य स्थानों पर आए और फिर वहीं बस गए। कृष्णाजी के जन्म से चार माह पहले ही उनके पिता प्रभाकर पंत का स्वर्गवास हो गया। माँ व दादी दोनों ने नवजात शिशु को इस दुर्भाग्य का कारण माना। माता ने उसे दूध पिलाने से अस्वीकर कर दिया। परन्तु देवकी के कृष्ण को जैसे यशोदा मैया ने पाला-पोसा, वैसी ही एक यशोदा इस कृष्ण को भी मिली। माँ और दादी का क्रोध भी समय के साथ शांत हो गया।

सांगली से पुणे शहर की दूरी अधिक नहीं है। पुणे किसी समय पेशवाओं की राजधानी थी। वीर शिवाजी ने इसी शहर में स्वराज्य की नींव रखी थी। स्वराज्य को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानने वाले 'भारतीय असंतोष के जनक' लोकमान्य बालगंगाधर तिलक भी यहीं पले बढ़े थे। बंबई एवं पुणे अंग्रेजों के समय में भी महाराष्ट्र के महत्त्वपूर्ण शहर थे। कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर की जन्मभूमि सांगली थी और कर्मभूमि थी—पुणे एवं बंबई। पुणे के 'केसरी' नामक दैनिक पत्र के कार्यालय में, लोकमान्य तिलक के शिष्य के रूप में उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन की शुरुआत की।

ई० सन् 1820 में पुणे में पेशवाओं का राज्य समाप्त हुआ। अंग्रेजों के राज्य में अंग्रेजी संस्कृति का प्रभाव तथा अंग्रेजों की धाक विशेष रूप से दिखाई देती रही। सन् 1857 में तथा उसके बाद के कुछ वर्षों तक देश में समाज की स्थिति किसी निष्प्राण शरीर के समान थी। धीरे-धीरे डर कम हुआ, और लोगों में जागरण की भावना जागृत हुई। महाराष्ट्र के हर क्षेत्र में कर्मयोगी पुरुषों ने जन्म लिया। छत्रपति शाहू महाराज, महात्मा ज्योतिबा फुले, विष्णुशास्त्री चिपलूणकर, महादेव रानाडे, लोकमान्य तिलक, गोपाल गणेश आगरकर इसमें

से कुछ थे। इनके बाद की पीढ़ी में कृष्णाजी खाडिलकर एवं नरसिंह चिंतामण केलकर की जोड़ी, लोकमान्य तिलक के सुप्रसिद्ध शिष्यों की जोड़ी के नाम से जानी गई।

कृष्णाजी की मैट्रिक तक की शिक्षा सांगली में हुई। सांगली मराठी नाटकों का घर माना जाता था। सन् 1843 में विष्णुदास भावे ने यहाँ मराठी मंच नाटकों की शुरुआत की। सन् 1860 तक इनके पौराणिक नाटकों का युग रहा। मंदिरों में होने वाले अनेक नाटक कृष्णाजी ने अपने बचपन में देखे। अंग्रेज़ी की तीसरी कक्षा में पढ़ते समय उन्होंने स्वयं भी एक नाटक लिखा। घर के बड़े बुजुर्गों को इस उम्र में नाटकों का यह शौक अच्छा नहीं लगा। स्कूल के शिक्षक ने भी बालक को समझदारी की दो बातें समझायीं। फलस्वरूप नाट्यलेखन का यह पहला प्रयत्न 'अग्नयेस्वाहा' हो गया।

सांगली हाईस्कूल में खाडिलकर को जीवन की जो दिशा मिली, उसका श्रेय शिक्षक श्री बापू सरदेसाई व अप्पाशास्त्री गोडबोले को दिया जाना चाहिए।

सांगली आने के पूर्व बापू सरदेसाई पुणे एवं कोल्हापुर में रहते थे। पुणे में खुले 'न्यू इंग्लिश स्कूल' के संस्थापकों तथा कार्यकर्ताओं से उनका संपर्क था। वे 'पुणे वैभव' तथा 'नाट्यकथार्णव' नामक नियतकालीन पत्रिकाओं में अनेक लेख लिखते रहते थे। इन लेखों का प्रभाव शिष्य खाडिलकर पर भी पड़ा। बापू सरदेसाई को पढ़ने-लिखने का विशेष शौक था। वे अनेक ग्रंथों का संपादन भी कर रहे थे। इन ग्रंथों का उपयोग करने की अनुमति उनके शिष्यों को भी थी। विस्तृत व गहन अध्ययन का व्यसन खाडिलकर ने बापू सरदेसाई के प्रोत्साहन से ही आत्मसात किया। उन्होंने ही खाडिलकर के हृदय में देशप्रेम व देशसेवा की भावना के बीज बोए। लेखक, वक्ता व देशभक्त के रूप में खाडिलकर को जो कीर्ति मिली, उसमें बापू सरदेसाई द्वारा मिले संस्कारों का विशेष योगदान था।

संस्कृत भाषा के महान् पंडित श्री अप्पाशास्त्री गोडबोले के पास खाडिलकर ने संस्कृत नाटकों का सटीक पठन एवं मनन किया। भवभूति का "उत्तर रामचरित" नाटक उन्हें अत्यन्त प्रिय था, जिसे उन्होंने शीघ्र ही पूरा कंठस्थ भी कर लिया। खाडिलकर की नाट्याभिरुचि को नियमबद्धता एवं गंभीरता प्रदान करने का कार्य भी उन्होंने किया।

खाडिलकर अपनी पढ़ाई में हमेशा तेज रहे। स्कूल तथा कॉलेज में उन्हें हमेशा छात्रवृत्तियाँ मिलती रहीं। लेकिन पढ़ाई के साथ-साथ शैतानी में भी वे कम न थे। सांगली में पाठशाला से छुट्टी पाते ही, नदी के किनारे रेत पर खेलना उन्हें बड़ा प्रिय था। नदी में जब बाढ़ आई हो तब तेज प्रवाह में छलांग

लगाकर तैरते हुए नदी पार करने का आनन्द कुछ और ही था। खेलों के साथ साथ अखाड़े में भी वे पीछे न रहते थे। अपनी माँ के साथ वे मंदिर में पुराण कथाएँ सुनने भी जाते थे। मंदिरों में सुनी हुई कथाओं की अपेक्षा उन्हें घर आकर माँ के मुख से वही कथाएँ और अधिक रुचिपूर्ण तरीके से सुनने को मिलती थीं, जो उन्हें अधिक आनन्ददायक लगती थीं।

ई० सन् 1889 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद, कॉलेज की शिक्षा के लिए वे पुणे चले गये। बम्बई विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 1857 में हो चुकी थी। तब समाज के मार्ग प्रदर्शक श्रेष्ठतम व्यक्तियों का निर्माण भी होने लगा था। पुणे का वातावरण नवजागरण से परिपूर्ण था।

पुणे में श्री तात्यासाहेब केलकर, श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर, शंकर श्रीकृष्ण देव, गंगाधर राव देशपांडे आदि खाडिलकर के सहपाठी थे। शिवराम महादेव परांजपे 'फेलो' थे। इन सबकी आपसी चर्चा में परतंत्रता के प्रति तीव्र विरोध व्यक्त किया जाता और विचार विनिमय करते समय देशसेवा के मार्ग ढूंढ़ने का प्रयत्न किया जाता था।

कॉलेज की पढ़ाई के साथ-साथ खाडिलकर ने अंग्रेज़ी व संस्कृत नाटकों का भी अध्ययन किया। पाश्चात्य नाटककारों में शेक्सपीयर तथा संस्कृत नाटककारों में कालिदास व भवभूति उन्हें विशेष प्रिय थे। पुणे के रंगमंच पर उन्होंने संस्कृत व अंग्रेज़ी नाटक मराठी पहनावे में देखे। हैमलेट व ऑथैलो देखने के बाद इन दोनों नाटकों के प्रमुख पात्रों के चरित्रों से प्रेरणा लेकर एक नया नाटक लिखने की कल्पना उनके दिमाग में आई। बी. ए. की परीक्षा के बाद समय पाते ही उन्होंने एक ऐतिहासिक नाटक 'सवाई माधवरावाचा मृत्यु' के नाम से तैयार किया।

खाडिलकर की माता अत्यन्त श्रद्धालु व ईश्वर भक्त थीं। भगवान दत्त की उपासना की परंपरा इनके घर में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही थी। पिता प्रभाकर पंत द्वारा स्वरचित गुरुचरित्र की पोथी घर के पूजास्थान में विराजित रहती थी।

इन्हीं कारणों से खाडिलकर के मन में भक्तिभाव, भारतीय परंपरा के प्रति अभिमान व भारतीय दर्शन के लिए अनुराग बचपन से घर करते चले गये। कालांतर में इन विचारों का विकास होता गया तथा बाद में वे उनके जीवन-स्थिर हो गये। कॉलेज में दर्शन शास्त्र उनका प्रमुख विषय था। इस विषय के प्रसिद्ध प्राध्यापक प्रोफेसर सेल्बी उस समय पुणे के डेक्कन कॉलेज में पढ़ाते थे। इनके लिए ही खाडिलकर ने फर्ग्युसन से डेक्कन कॉलेज में प्रवेश ले लिया था।

डेक्कन कॉलेज में पढ़ते समय उनके हृदय की राष्ट्रभक्ति एवं देशसेवा की

भावनाएँ—बाह्य रूप से भी प्रकट होने लगीं। इसी कॉलेज में लोकमान्य तिलक व उनके मित्रों ने देशसेवा की बातें करके अपने-अपने मार्ग निश्चित किए थे। पुणे में सन् 1880 में लोकमान्य तिलक के सार्वजनिक कार्यों की शुरुआत हुई थी। लोकमान्य तिलक के व्यक्तित्व तथा उनके द्वारा प्रवर्तित दैनिक 'केसरी' का उस समय खाडिलकर के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

अपने बड़े भाई की इच्छा को मान देकर खाडिलकर ने सांगली में दो वर्ष शिक्षक बनकर कार्य किया। यहीं उन्होंने पहला नाटक लिखना शुरू किया और पूरा किया। इसके दो वर्ष पश्चात् वे एल० एल० बी० की पढ़ाई के लिए बम्बई गये। यहाँ पर उनके लिखने के शौक को नया अवसर मिला। कानून के अध्ययन में उन्हें विशेष रस नहीं मिला। उनके मन में लेखन तथा देश-सेवा करने की प्रबल इच्छा एवं उत्साह था। किन्तु कार्य को अभी निश्चित दिशा तथा राह नहीं मिली थी।

उन दिनों बम्बई से 'विविध ज्ञान विस्तार' नामक एक प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी। अनेक विद्वान लेखकों के लेख इसमें प्रकाशित होते थे। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर इस पत्रिका से संबद्ध थे। वे भी बम्बई में एल० एल० बी० की पढ़ाई पूरी कर रहे थे। 'विविध ज्ञान विस्तार' में खाडिलकर का नाटक 'सवाई माधवरावाचा मृत्यु' धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। 'गौतम बुद्ध' शीर्षक से उनका एक लम्बा लेख भी इसी पत्रिका में छपा। अपनी लेखन-कला को सँवारने का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवसर उन्हें यहाँ मिला।

लेखन तथा देशप्रेम और देशोद्धार की भावना से ओत-प्रोत युवक के के रूप में लोगों को खाडिलकर का परिचय इसी पत्रिका द्वारा हुआ। प्रिंसिपल गोले के मराठी ग्रंथ 'ब्राह्मण व उनकी विद्या' पर लिखे गये टीका-लेखों में उनकी आत्म-कर्त्तव्य भावना और देशोद्धार के लिए तीव्र उत्कंठा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अपनी परंपरा तथा अपने इतिहास का अभिमान जाग्रत रखकर, अपनी मेहनत व प्रयत्नों की मदद से भारत को वैभव के शिखर पर पहुँचाना संभव है। निम्नलिखित विचार उनकी मनःस्थिति को स्पष्ट करते हैं :

> "लोगों के सामने उदात्त कल्पना व उच्च मनोभावना सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट करना ब्राह्मणों का धर्म है। यदि ब्राह्मण ही अपना यह श्रेष्ठ कार्य भूलकर स्वार्थी होने लगें तो इसमें सन्देह नहीं कि संपूर्ण देश अवनत होता जाएगा…हमारे उच्च विचार हमें पीछे छोड़ गये एवं हीन मनोवृत्तियों ने हमें घेर लिया इसीलिए तो हम स्वराज्य तक गँवा बैठे। उन उच्च विचारों और उच्च मनोवृत्तियों को पुनः जाग्रत करके संपूर्ण राष्ट्र में फैलाने के अलावा हमारे सामने कोई रास्ता नहीं…। स्वार्थ की विशाल नींव पर खुश होकर टिके रहने पर विचारों के उच्च शिखर की ओर देखने से सिर घूमने लगेगा, यह बात हमेशा याद रखनी होगी…राजकीय सुधार का प्रयत्न अपने स्वार्थ के लिए अथवा अपने लोगों को साहबी नौकरी में झोंक दे, ऐसा नहीं करना है। राष्ट्रोन्नति के लिए काम करनेवालों के भाग्य में हमेशा कष्ट ही आता है। विजयी लोगों का स्वार्थ और सुखों के पीछे भागना कीचड़ में पाँव चलाने जैसा है…सुशिक्षित वर्ग राष्ट्र के लिए है। राष्ट्र सुशिक्षितों के लिए नहीं…"

देश सेवा का संकल्प लेने पर कष्टों का सामना करना होगा, यह बात उस समय की युवा पीढ़ी ने जान ली थी। लोकमान्य तिलक ने एक वर्ष पढ़ाई छोड़कर शरीर सुदृढ़ बनाने में ही समय बिताया। खाडिलकर के मन में भी यही भूमिका शुरू से ही विराज रही थी। इसी कारण उन्होंने कॉलेज की शिक्षा के दौरान शारीरिक व्यायाम की ओर भरपूर ध्यान दिया। कॉलेज में सुरपाटी (कबड्डी जैसा ही एक खेल) खेलते समय उनकी शारीरिक चपलता उनके मित्रों को चकित कर देती। देशी खेलों के साथ-साथ टेनिस जैसे विदेशी खेलों में भी वे पीछे न थे।

खाडिलकर बम्बई में एल० एल० बी० का पाठ्यक्रम पूरा कर रहे थे परन्तु उनका मन उसमें रमा न था। सांगली एवं पुणे में उन्होंने स्कूल, कॉलेज तथा बाह्य जीवन से जो शिक्षा प्राप्त की थी, वह केवल आजीविका के लिए नहीं। शिक्षित वर्ग देश के लिए है—यह बात वे कभी नहीं भूले। परतंत्रता व देश की दुःस्थिति का परिणाम उनके मन पर गहरा हो रहा था। अंग्रेजों ने देश में शांति बनाए रखने के बहाने सुव्यवस्था का जो मोहजाल उत्पन्न कर रखा था उससे गुलामी के बंधन और भी जटिल हो गये थे। खाडिलकर जैसे तेजस्वी युवा हृदय को यह बात अत्यन्त उद्विग्न कर रही थी। राष्ट्रोद्धार के कार्य को सफल बनाने का अवसर मिले, ऐसी उनकी अभिलाषा थी और ऐसा सुअवसर सौभाग्य से उन्हें शीघ्र ही प्राप्त हुआ।

यह मात्र संयोग ही था अथवा विधि का पूर्व नियोजित विधान ! अपनी 'ओंकाराची उपासना' नामक पुस्तक में खाडिलकर स्वप्न साक्षात्कार के विषय में कहते हैं कि 'केसरी' पत्रिका में काम शुरू करने से पूर्व स्वप्न में उन्हें दो बार 'केसरी' अक्षर स्पष्ट दिखाई दिये। मनोविज्ञान की दृष्टि से भी इस पर प्रकाश डाला जा सकता है। किसी विशेष बात की मनुष्य को धुन लग जाये तो 'जो मन में बसे, वह स्वप्न में दिखे' वाला मुहावरा चरितार्थ हो जाता है। देश सेवा की कैसी दृढ़ इच्छा उनके मन में घर किये थी, यह इस स्वप्न-साक्षात्कार से सिद्ध होता है।

महान् देशभक्त व नाटककार नारायण बापूजी कानेटकर से खाडिलकर का बम्बई में परिचय हुआ। कानेटकर जी ने पुणे में उनका परिचय लोकमान्य तिलक से करवाया। तिलक ने खाडिलकर की 'विविध ज्ञान विस्तार' में प्रकाशित लेखमाला पढ़ी थी। इन लेखों की विचार-प्रक्रिया और युक्तिवादिता देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत थी। प्रथम परिचय में ही तिलक ने खाडिलकर से 'केसरी' के लिए एक लेख लिखने को कहा। विषय था 'राष्ट्रीय महोत्सवों की आवश्यकता'' ।

बहुत थोड़े समय में ही खाडिलकर ने यह लेख तैयार कर लिया। लेख इतना सुन्दर बना था कि तिलक को वह अग्रलेख के रूप में छपने योग्य लगा। इस प्रकार इस अग्रलेख के साथ 1 सितम्बर, 1896 को खाडिलकर 'केसरी' के संपादक परिवार में शामिल हो गए।

इस समय तक खाडिलकर का विवाह हो चुका था। उनकी तीन वर्ष की कन्या भी थी। राष्ट्र सेवा के रास्ते में उन्होंने अपनी गृहस्थी सँजोये रखने का विचार नहीं किया। वैयक्तिक हित की अपेक्षा राष्ट्र के हित की चिंता उन्हें अधिक थी।

देशभक्त

(तिलक युग)

देशभक्ति के व्रत का संकल्प लेकर कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर ने 'केसरी' के कार्यालय में प्रवेश किया। स्वार्थ एवं पैसा कमाने के लिए वकालत करने के बदले देश की स्वतंत्रता प्राप्ति की अभिलाषा से बाल गंगाधर तिलक जैसे देशभक्त का शिष्य बनना तथा देशवासियों की शिक्षा एवं जागृति का जिम्मा लेना उन्होंने कहीं अधिक पसंद किया। उन दिनों 'केसरी' से संबंध का मतलब था त्याग ! 'केसरी' याने अंग्रेज़ी सरकार का रोष ! 'केसरी' असिधारा व्रत के समान था।

खाडिलकर ने 'केसरी' के उपसंपादक का भार बड़े शुभ समय पर सँभाला। देश की परिस्थिति तेज़ी से बदल रही थी। जनता एवं सरकार का आपसी विवाद तीव्र होने लगा था। यह लोगों में जागृति एवं शिक्षा प्रचार के लिए उनकी तेजस्वी लेखन शैली तथा संपादन कौशल की परीक्षा का समय था।

सरकारी नौकरी न करके देशसेवा का मार्ग चुननेवाले तिलक व आगरकर दोनों ही विष्णु शास्त्री चिपलूणकर से जा मिले। चिपलूणकर 'निबंधमाला' नामक एक मासिक पत्रिका चला रहे थे। इसी के माध्यम से उन्होंने युवकों में स्वदेश, स्वभाषा, स्वसंस्कृति के प्रति स्वाभिमान निर्माण करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। कुछ ही वर्षों में, सन् 1885 में, राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ-साथ अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध आंदोलन शुरू होने लगे।

चिपलूणकर ने अपने कार्यों को दो भागों में विभाजित किया था। प्रथम के अंतर्गत युवा पीढ़ी में स्वाभिमान की लौ जागृत करना व दूसरे में इसके लिए पाठशालाएँ, समाचार-पत्र तथा भाषण इत्यादि का उपयोग करना। 'न्यू इंग्लिश स्कूल' एवं 'केसरी' तथा 'मराठा' पत्र इसी परियोजना के परिणाम थे।

महाराष्ट्र में इस समय दो राजनीतिक दल बन गए थे—क्रांतिकारी उग्रवादी और सौम्य (अहिंसा) वादी। तिलक उग्रपंथ के नेता बने और दूसरे

दल की 'डेक्कन एज्युकेशन सोसायटी' से उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। 'केसरी' तथा 'मराठा' दोनों पत्रों की जिम्मेदारी उन्होंने अपने हाथ में ले ली। अपनी परंपरा का अभिमान हृदय में लेकर वे प्रखर स्वतंत्रतावादी विचारधारा का नेतृत्व करने के लिए अब प्रस्तुत थे।

सन् 1892 से 1896 के बीच तिलक ने विविध प्रकार के आंदोलन चलाकर अपने भाषणों तथा लेखों के माध्यम से जन जीवन में तीव्र जागृति की लहर फैला दी। राष्ट्रीय पक्ष के प्रतिनिधि-पत्र के रूप में 'केसरी' अत्यंत महत्त्वपूर्ण समाचार-पत्र बन गया था। अतः 'केसरी' जैसे पत्र के लिए कार्य करना खाडिलकर जी के लिए बड़ी जिम्मेदारी का काम था।

यह जिम्मेदारी केवल समाचार-पत्रों में लेख लिखने तक ही सीमित न थी। पुणे में उन दिनों रोज ही नये-नये सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि प्रश्नों पर चर्चा होती थी। इन चर्चाओं में तिलक के साथियों को अपने पक्ष की ओर से बोलना पड़ता था। श्रीगणेश उत्सव, शिवाजी उत्सव जैसे सामूहिक उत्सवों के समय तो इनके व्याख्यानों की जैसे झड़ी लग जाती थी।

खाडिलकर के 'केसरी' में प्रवेश लेने के बाद ही, महाराष्ट्र में अकाल पड़ा। किसानों की परिस्थिति चिंताजनक हो गयी। किसी भी अवसर का लाभ उठाकर उसका जनजागृति के लिए उपयोग करने में तिलक अब सिद्धहस्त थे। अतः अकालग्रस्त इलाकों—शोलापुर व बीजापुर में परिस्थिति की जानकारी लेने के लिए उन्होंने खाडिलकर को भेजा। इससे इन्हें दूर-दूर तक गाँवों में जाने का अवसर मिला। उनके व्याख्यानों से गाँव के किसानों में काफ़ी दूर-दूर तक जागृति फैल गयी। किसानों को अपने अधिकारों का ज्ञान हुआ।

इन्हीं दिनों खाडिलकर के अकाल संबंधी लेख भी 'केसरी' में छप रहे थे। तर्क शुद्ध विचार, उत्तेजक भाषा, निर्भय आलोचना तथा अचूक उपायों को प्रस्तुत करने की कला, इन सब गुणों के कारण उनके लेखों ने अपूर्व जन जागृति का कार्य किया।

पुणे शहर में 22 जून, 1897 के दिन रैण्ड व आयर्स्ट नाम के दो गोरे अधिकारियों की हत्या हो गई। इससे कुछ ही माह पूर्व पुणे में प्लेग फैला था और रैण्ड साहब ने अपने साथियों की मदद से लोगों पर अत्यधिक अत्याचार किये थे। रुपये, पैसों के साथ औरतों की इज्जत भी लूटी गयी थी। उनकी हत्या जन साधारण की घृणा एवं असंतोष का परिणाम थी।

फिरंगियों के अत्याचार बढ़ते ही जा रहे थे। 27 जुलाई, 1897 के दिन लोकमान्य तिलक पर राजद्रोह का आरोप लगाकर उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। 'केसरी' के जिस लेख के आधार पर तिलक पर मुक़दमा चलाया गया था वह लेख खाडिलकर ने ही लिखा था।

संपादक होने के नाते, इस लेख की जिम्मेदारी तिलक ने स्वयं अपने ऊपर ली। वैसे भी सरकार तिलक पर मुक़दमा चलाने के लिए मौक़े की तलाश में ही थी। अंग्रेजों के अत्याचारों और लूट के विरोध में तिलक अपनी दाहक एवं कटु आलोचना 'केसरी' द्वारा बड़ी निर्भयता से प्रदर्शित कर रहे थे। सरकार का असली रूप जनसाधारण को दिखाकर उन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान कराने वाला यह पत्र सरकार की आँखों में काँटे की तरह अवश्य ही खटकता हो। चाहे उसकी बात कितनी ही तर्कशुद्ध तथा क़ायदे-कानून के दायरे में सही बैठनेवाली क्यों न हो?

तिलक के कारण जनता में अशांति बढ़ी। सारी युवा-पीढ़ी का दिमाग़ ठनका। इन्हीं कारणों से सरकार के विश्वसनीय सेवकों पर जानलेवा हमले होते है—ऐसा सरकार का उनपर आरोप था। ऐसी स्थिति में, तिलक को किसी भी बहाने से गिरफ़्तार करके उनपर मुक़दमा चलाते समय सरकार ने यथोचित तथा क़ानून की दृष्टि से उपयुक्त कारण ढूँढ़ने का विशेष प्रयत्न नहीं किया, यह आश्चर्य की बात न थी।

फलस्वरूप तिलक पर मुक़दमा चला और उन्हें 18 महीने के लिए सश्रम कारावास सहित क़ैद की सजा सुनाई गई। अंग्रेज सरकार ने क़ायदे-कानून, मुक़दमे का दिखावा किया परन्तु वास्तव में उन्हें कानून से हटकर ही कार्यवाही करनी पड़ी। सरकार ने दण्ड संहिता 124-अ की धारा—'अप्रीति' के अंतर्गत आये शब्दों के अर्थ को तोड़-मरोड़ कर तिलक को सजा सुना दी।

तिलक पर जिस समय मुक़दमा चल रहा था, उस समय तथा उसके बाद भी, काफ़ी समय तक 'केसरी' के संपादन की जिम्मेदारी पूर्ण रूप से खाडिलकर के ऊपर थी। मुक़दमे की अपील हाइकोर्ट में भी की गई परन्तु वह मान्य न हुई। न्यायाधीश की अंग्रेजों की हाँ में हाँ मिलाने की नीति से तंग आकर खाडिलकर ने 'केसरी' में इस विषय पर 28 सितम्बर, 1897 को एक लेख लिखा। 'अप्रीति' शब्द की खींचा-तानी करने की छूट न्यायाधीश को मिलने के कारण कैसी हास्यास्पद आपदाओं की झड़ी लग सकती है, इस बात की बड़ी मार्मिक विवेचना उन्होंने इसमें की--

> "···गोरक्षण के पक्ष में आवाज उठानेवालों के भाग्य में बंदीगृह होगा, स्वदेशी वस्त्र पहननेवालों को जेल के वस्त्र पहनकर, चोर उचक्कों के साथ जेल में मजदूरी करनी पड़ेगी, श्रीगणेशोत्सव के अवसर पर व्याख्यान देनेवालों को समाज के नीच बदमाशों की पंक्ति में बैठकर मोटी रोटियाँ तोड़नी पड़ेंगी,···पुस्तकें पढ़ानेवाले प्रोफ़ेसर को कब पुलिस चौकी से बुलावा आये कोई नहीं कह सकता। हॅम्डन, वॉशिंगटन, क्राम-वेल, नेपोलियन, शिवाजी, बाजीराव, माधवराव जैसे लोगों के चरित्र-

> चित्रण सरस भाषा में लिखनेवाले इतिहासकारों को भी न जाने कब, कौन धारा—124-अ के अंतर्गत पकड़ने आ जाये, इसी चिंता में दिन व्यतीत करने चाहिए। स्वतंत्र देश में दिन बितानेवाले लोगों के सुखी जीवन का वर्णन करनेवाले कवि को सरकारी सिपाही को दरवाजे पर खड़ा देखकर डर से कांप उठना चाहिए,···हमारी कविताओं, हमारे नाटकों, हमारे उपन्यासों, हमारी ऐतिहासिक पुस्तकों, हमारे समाचार-पत्रों में कहीं भी उच्च विचार व उदात्त मनोवृत्ति न हो क्योंकि परतंत्रता में उच्च विचार व उदात्त मनोवृत्तियों का प्रचार प्रसंगविशेष में राजद्रोह भी कहलाया जा सकता है—ऐसा स्ट्रेची साहब का विचार है।''

1897 की राष्ट्रीय सभा तिलक की अनुपस्थिति में हुई। खाडिलकर ने कांग्रेस के 12-13 वर्षों का लेखा-जोखा देखकर और समझकर कांग्रेस के कार्यों को इच्छानुसार सफलता न मिलने का मर्म तिलक के सामने रखा। साथ ही, यह भी समझाया कि लोकजागृति का कार्य व्यापक स्तर पर शुरू करना कितना आवश्यक है :—

> ''आयरलैंड, इंग्लैंड या फ्रांस में जिस प्रकार लोगों के नेता संसद के कार्यों द्वारा जनता का मन अपने हित में बनाने के लिए पूरे देश की यात्रा करने को उद्यत रहते हैं; उसी प्रकार अपने देश में भी नेताओं को प्रतिवर्ष राष्ट्रीय सभा के कार्यों द्वारा जनमत जाग्रत करने के लिए राजनैतिक हलचल पैदा करनेवाले कार्य करने को तैयार रहना चाहिए। राष्ट्रीय सभा के कार्यकर्त्ता यदि इस प्रकार के आक्रामक राजनैतिक उपाय करके अन्य देशभक्तों के समक्ष जनमत संग्रह करने का उदाहरण रखें तो राष्ट्रीय सभा के कार्यों को अवश्य सफलता मिल सकती है।''

तिलक की अनुपस्थिति में अनेक घटनाएँ घटीं। अनेक प्रश्न उपस्थित हुए। विशेषत: 8 फरवरी, 1898 के दिन चाफेकर बंधुओं की जानकारी सरकार तक पहुँचानेवाले द्रविड बंधुओं का पुणे में खून हो गया। देश के लिये नि:स्वार्थ बलिदान करने के इच्छुक युवकों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। उन्हें योग्य मार्गदर्शन की आवश्यकता थी। खाडिलकर द्वारा देश के हित की इच्छा से लिखे हुए लेखों ने उन्हें योग्य दिशा का ज्ञान दिया। संकट के समय भी 'केसरी' पत्र निष्ठा से कार्य करता है, यह उन्होंने जनता को दिखा दिया।

खाडिलकर तिलक के कार्यों तथा विचारों से एकरूप हो गए थे। 'केसरी' का कार्यभार सँभालते समय उन्होंने लोगों को तिलक की कमी महसूस न होने दी। जेल से वापस आने के कुछ महीनों बाद, तिलक ने 'केसरी' का कार्यभार पुन: अपने कंधों पर लिया। इस समय अपने सर्वप्रथम लेख में उन्होंने खाडिलकर के कार्य की निम्नलिखित शब्दों में प्रशंसा की :

> ''जोड़ जितना अदृश्य बनाया जाए अथवा जोड़ लगाया गया है या नहीं, देखनेवालों को ऐसी भ्रांति होने लगे—तभी जोड़नेवाले की कला कसौटी पर खरी उतरती है। ऐसा ही जोड़ इन्होंने तैयार किया था, यह 'केसरी' पढ़ने वालों ने जान ही लिया है। यद्यपि रा. रा. खाडिलकर का नाम मुख्य प्रकाशकों में न था फिर भी 'केसरी' के अधिकांश सम्पादकीय अग्रलेख उन्होंने ही लिखे, यहाँ यह बताना जरूरी है।''

अपनी परंपरा के प्रति गर्व की भावना, देश के प्रति प्रखर अभिमान, विषय को देश के हित की दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति, प्रतिपाद्य विषय प्रभावी और ठोस रूप में वाचकों के सामने स्पष्ट हो सके, ऐसी शब्द-योजना और शिल्प आदि खाडिलकर की लेखनी के मुख्य गुण थे।

बंगाल तथा महाराष्ट्र में गुप्त क्रांतिकारी संघटनों का जोर बढ़ता जा रहा था। तिलक का दल उग्र हिंसावादी दल माना जाता था। चाफेकर बंधुओं के बारे में पूछताछ के समय ब्रुइन साहब के मुँह पर ही तिलक ने कहा था, 'अनुकूल समय आने पर मैं क्रांति करूँगा'। ठीक इसी तरह, खाडिलकर भी कट्टर क्रांतिवादी माने जाते थे।

क्रांतिकारी विचारधारा के अनेक अनुयायी तिलक के साथ थे। हथियार बिना स्वतंत्रता पाना असम्भव है व इसी दिशा में हमें प्रयत्न करना चाहिए—ऐसा शिवराम महादेव परांजपे का कहना था। अपनी 'काल' पत्रिका द्वारा इस प्रकार के तीव्र विचार प्रस्तुत करते हुए वे कभी नहीं हिचके। तिलक तथा खाडिलकर भी क्रांतिकारी ही थे। किन्तु ये दोनों अधिक व्यवहारी तथा अधिक व्यापक बुद्धि सम्पन्न थे।

व्यक्तिगत हिंसा वाली राजनीति में तिलक व खाडिलकर विश्वास नहीं रखते थे। और ऐसी विचारधारा वाले युवाओं का पक्ष खाडिलकर हमेशा अप्रत्यक्ष रूप से ऊँचा उठाते रहे। या कि दो-चार गोरे अधिकारियों की हत्या कर देने से स्वतन्त्रता आंदोलन को विशेष लाभ होगा, ऐसा उन्होंने कभी नहीं माना। इसके विपरीत, छोटी-मोटी घटनाओं से विदेशी सरकार को नाराज करके हानि की ही अधिक संभावना उन्हें दिखाई दे रही थी।

1857 की क्रांति जैसा प्रयोग करने का प्रयत्न भी कुछ लोग करना चाह रहे थे। उपयुक्त हथियारों को जमा कर सकने पर ऐसा संघटित प्रयत्न कर देखने में तिलक एवं खाडिलकर की सहमति थी। यद्यपि अंग्रेजों की शस्त्र संख्या अधिक थी, तब भी धूर्त्तता से, छापामार-पद्धति से लड़ाई करके विदेशी सरकार को परेशान किया जा सकता है, ऐसा खाडिलकर का विश्वास था। उन्हीं दिनों

दक्षिण अफ्रीका के 'बोअर' लोगों ने हथियारों से लैस होकर अंग्रेजों के विरुद्ध बड़े पैमाने पर युद्ध करके काफ़ी सफलता प्राप्त की थी। इस यश के पीछे लड़ाई की इसी छापामार नीति का उपयोग किया गया था। खाडिलकर लिखते हैं :

> "जिस देश का अभिमान जागृत है, जिस राष्ट्र के निवासी अवसर आने पर कष्ट सहने को तैयार रहते हैं, जिस राष्ट्र की बुद्धिमत्ता फ़ालतू नहीं, उस राष्ट्र को अपनी रक्षा के लिए पड़ोसी राष्ट्र जितनी सामर्थ्यवान सेना रखनी जरूरी नहीं, यह सिद्धान्त बोअर युद्ध ने सिखाया है।"

इससे पहले महाराष्ट्र में भी, वीर शिवाजी ने मुग़लों की विशाल सेना से इसी पद्धति से लड़ाई लड़ी थी और विजय पायी थी।

नेपाल में शस्त्रास्त्रों का कारखाना बनाने की एक योजना तिलक के पास आई थी। इस कार्य के लिए खाडिलकर को नियुक्त किया गया। सैनिक वृत्ति के चलते उन्होंने इस कार्य को स्वीकार किया। जल्दी ही वे नेपाल की राजधानी काठमांडू पहुँच गए। शस्त्र बनाने का यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ। इधर सरकार को इस कार्यकलाप का पता लग गया। खाडिलकर के पकड़े जाने की संभावना थी, परन्तु नेपाल नरेश की मदद से वे सही सलामत वापस आ गए।

खाडिलकर जब महाराष्ट्र वापस आये, तब भारतीय राजनीति के आकाश में झंझावात की संभावना के घने बादल जमा होने लगे थे। जुलाई, 1905 में लॉर्ड कर्ज़न ने बंगाल का विभाजन कर दिया। संपूर्ण बंगाल इस तानाशाही से तिलमिला उठा। यह असंतोष केवल बंगाल तक ही सीमित न न रहा। सारे भारतवर्ष में इसकी प्रतिध्वनि सुनाई दी।

कर्ज़न साहब की भारत के गवर्नर जनरल के पद पर नियुक्ति हुई। उसी समय खाडिलकर ने इनके बारे में 'केसरी' में लगातार तीन लेख लिखे। कर्ज़न साहब के बारे में संपूर्ण जानकारी हासिल करने के बाद ये लेख लिखे गए थे, जिनमें बड़े मार्मिक ढंग से उनके स्वभाव का चित्रण किया गया था। इन गोरे साहब के कार्यभार सँभालते ही भारतीय जनता को इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी होने लगा।

बंगाल विभाजन के चलते महाराष्ट्र में ज्वलंत अशांति फैला देने का निर्णय भी राष्ट्रीय पक्ष में लिया गया। सभाएँ, परिषद् और मेले यहाँ-वहाँ होने लगे। राजकीय सभामंच पर खाडिलकर के भाषण प्रसिद्धि पाने लगे। उस समय के उनके भाषण आख्यान कला के उत्कृष्ट नमूने थे। इस कला के मंथन से 'स्वदेशी' व 'बहिष्कार' जैसे दिव्य अस्त्र उत्पन्न हुए। 'वन्देमातरम्' की घोषणा से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। सरकार विरोधी असंतोष से सारा वातावरण व्याप्त हो गया।

सन् 1906 का कांग्रेस अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। इसके अध्यक्ष थे, राष्ट्रपितामह दादाभाई नौरोजी। दादाभाई नौरोजी ने इस सभा में भारत के लिए स्वराज्य की तीव्र शब्दों में माँग की। केवल माँग करने से स्वराज्य नहीं मिलता। अत: राष्ट्रीय शिक्षा, मद्यपान-निषेध, स्वदेशी तथा बहिष्कार के चार सूत्री स्वावलंबी किन्तु आक्रामक कार्यक्रमों पर चलने का निर्णय लिया गया।

इस बीच देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर अनेक संस्थाएँ संपूर्ण देश में स्थापित हुई। अनेक संस्थाएँ बनीं। अनेक कारखाने बने। बीजापुर का राष्ट्रीय शिक्षण का समर्थ विद्यालय इसी अवधि में शुरू हुआ।

कांग्रेस द्वारा बहिष्कार सम्बन्धी निश्चय और साथ ही, जनता के ज्वलंत क्षोभ से अंग्रेजी सरकार घबरा उठी तब ब्रिटिश सरकार ने अहिंसावादी नरम दल के नेताओं को अपनी ओर मिलाकर इस आंदोलन को शह देने का फ़ैसला किया। नरम दलीय उनके इस जाल में आसानी से फँस गए।

नागपुर के कांग्रेस-गढ़ में सूरत को मिलाने की चाल उन्होंने चली। सरकार को खुश करने के लिए बहिष्कार विरहित स्वदेशी प्रस्ताव मंजूर करवाने का निश्चय किया गया। लोकमान्य तिलक तथा उनके राष्ट्रीय पक्ष को कांग्रेस का इस प्रकार पीछे हटना मान्य न था। उन्होंने फ़िरोज़शाह मेहता व गोखले इत्यादि लोगों के हृदय परिवर्तन का बड़ा प्रयत्न किया।

उनका यह प्रयत्न असफल रहा। झगड़ा अंतिम सीमा तक जा पहुँचा। सूरत की कांग्रेस अस्त व्यस्त हो गयी।

सूरत कांग्रेस के झगड़े के समय तिलक की हर प्रकार से मदद करने के लिए खाडिलकर उपस्थित रहे। इस समय की सम्पूर्ण जानकारी देने वाले उनके 'केसरी' के लेख अत्यंत उत्कृष्ट हैं। केसरी के 31 दिसम्बर 1907 के अंक में वे लिखते है :—

> "लाला लाजपतराय, चुन्नीलाल, विदुर और श्रीकृष्ण जैसे लोगों में से किसी को भी सन्धि कराने में सफलता न मिल सकी क्योंकि आपसी झगड़ा अंत तक झगड़कर अलग होने की जैसे प्रतिज्ञा कर सर मेहता और गोखले ताप्ती नदी के तीर पर आसन जमाकर बैठे हुए थे। झगड़े की मुद्रा छोड़ने को दोनों ही तैयार न थे। मध्यस्थ बनकर आया यह कृष्ण ही चुपचाप, भीतर ही भीतर, बड़ी चालाकी से डोरे खींचकर राष्ट्रीय पक्ष को उत्तेजित कर रहा है, राष्ट्रीय सभा में संधि कराने का प्रयत्न करनेवाले वृद्ध तथा लोकप्रिय मध्यस्थों पर भी ऐसा वृथा आरोप लगाया गया।"
>
> "बृहस्पतिवार की रात व शुक्रवार की सुबह भी राष्ट्रीय सभा के कार्यकर्ताओं को दुराग्रह के अभेद्य आसन पर विराजमान होकर झगड़े के लिए तैयार देख कर, कुछ समय तक तो अलग होना ही पड़ेगा, इस विचार

> से राष्ट्रवादी पक्ष शोकातुर हो गया। परन्तु अपरिहार्य प्रसंग पर शोक करना उचित नहीं। भगवद्गीता के इस उपदेश को ध्यान में रखकर, देश के हित को ध्यान में रखते हुए अप्रिय कार्य भी करने चाहिए, राष्ट्रवादी पक्ष अपने कार्य में जुट गया।''

राष्ट्रीय पक्ष ने नये जोश से आंदोलन को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। तिलक पक्ष को सूरत कांग्रेस में जो विजय मिली, उसके कारण सरकार और अधिक चिढ़ गयी थी। उधर बंगाल में उग्रपंथी गतिविधियाँ चरम सीमा पर थीं। वहाँ के प्रसिद्ध क्रांतिकारी बारीन्द्र बाबू गुस्से से थर्रा उठे। अपने साथियों के साथ बंगाल के ज़िले-ज़िले में जाकर उन्होंने जनता को जागृत किया। अविनाश भट्टाचार्य व भूपेन्द्रनाथ दत्त की मदद से उन्होंने 'युगान्तर' पत्रिका शुरू की तथा अनुशासन समिति नामक गुप्त संस्था स्थापित करके उसकी 500 शाखाएँ जगह-जगह खोलीं।

कर्जन साहब बंगाल का विभाजन रद्द करने को तैयार न थे। अब वह उनकी प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था। इस मसौदे को लेकर उठ रही हलचल को निर्दयता पूर्वक कुचल डालने के अलावा उनके पास कोई दूसरा रास्ता न था। परिणामस्वरूप खुदीराम बोस ने 30 अप्रैल, 1908 के दिन मुजफ्फरपुर में गोरे अधिकारी पर पहला बम फेंका।

कलकत्ते में बमबारी से संबंधित गुप्त गुट के पकड़े जाने और मुजफ्फरपुर के बम विस्फोट से भारत में ही नहीं बल्कि विलायत में भी खलबली मच गई। एंग्लो-इंडियन पत्रकारों ने इस घटना के लिए राष्ट्रीय पक्ष के नेताओं को तथा उनके समाचार पत्रों को ज़िम्मेदार ठहराया। इधर एंग्लो-इंडियन पत्रकार देशी समाचार पत्रों व नेताओं के विरुद्ध शोर कर रहे थे जबकि उधर 'केसरी' में इस विषय पर ज़ोरदार लेख छापे जा रहे थे। हिंसात्मक प्रवृत्तियों को धिक्कारते हुए, उनके कारणों की तह में जाने का प्रयत्न किया जा रहा था। साथ ही, युवाओं की इस आतंकवादी वृत्ति को बदलने का एकमेव मार्ग प्रजा को विश्वास में लेकर, उसे शासन में अधिकाधिक हिस्सा लेने का अवसर देना चाहिए—ऐसा संकेत इन लेखों में दिया जा रहा था।

अंग्रेजी सरकार को यह बात कदापि मान्य न थी। उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलनों की कमर पूरी तरह से तोड़ने की चाल सोची। साथ ही लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को पुनः पकड़कर, उन पर राजद्रोह का आरोप लगाकर मुक़द्दमा चलाया गया।

मुख्य मुक़द्दमे के लिए जिन आठ लेखों को कारण बताया गया था उनमें से पहले तीन लोकमान्य तिलक ने लिखे थे तथा उसी विचार नीति को सामने रखकर अन्य लेखों के लिखने का कार्य भार खाडिलकर को सौंपकर वे सिंहगढ़ चले गये थे। बाद के पाँचों लेख खाडिलकर की लेखनी द्वारा लिखे गये, जिनके शीर्षक क्रमशः इस प्रकार थे—(1) दुहरा इशारा (2) बम के गोले का वास्तविक अभिप्राय (3) बम के गोले का रहस्य (4) ये उपाय स्थायी नहीं (5) पत्रकार की स्फुट सूचनाएँ।

राष्ट्रीय आंदोलन की नीति को सुस्पष्ट करनेवाले तथा जनता के असंतोष का सम्यक् दर्शन करानेवाले ये लेख वैचारिक निबंध साहित्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। इन लेखों में खाडिलकर की निर्भीक वृत्ति एवं तर्कशुद्ध विचार धारा को समझने के लिए मूल लेखों को पढ़ना आवश्यक है। स्वल्प अनुमान के लिए कुछ लेखों के अंश यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं :—

> "भारत के सारे शासकीय कामकाज जनमत की यत्किंचित् भी परवाह न करते हुए केवल गोरे अधिकारियों की मर्जी से चलते है—जिसके कारण राजनीतिक, औद्योगिक, नैतिक एवं सांपत्तिक दृष्टि से भारत का जो नुकसान हो रहा है, उसे प्रमाणित करने के लिए ऐसे सशक्त व भरपूर प्रमाण मौजूद हैं कि, इन अधिकारियों के पक्षपाती लोगों के अलावा अन्य किसी के मन में वर्तमान शासन पद्धति की अन्यायी नीति के विषय में शंका नहीं रहेगी। यह पश्चिमी शिक्षा का ही फल है कि ऐसी शासन पद्धति को लोग हटाना चाहते है। इतने वर्षों तक प्रयत्न करते रहने के बाद भी शासकों के दुराग्रह के कारण न तो शासन पद्धति में सुधार हो रहा है और न ही जनता को स्वराज्य के अधिकार प्राप्त हो रहे हैं, यह देखकर देश के राजनीतिक नेताओं के मन में आक्रोश उत्पन्न हुए बिना नहीं रहेगा। यद्यपि यह आक्रोश नेता संवैधानिक मर्यादा के भीतर रख सकेंगे यह सत्य है, परन्तु जिसका आक्रोश इस सीमा का अतिक्रमण कर सके—ऐसा एक भी पुरुष इस देश में पैदा नहीं हुआ, ऐसा समझना संसार के आगे यह साबित करना है कि हम मानव स्वभाव से परिचित नहीं हैं। अतएव अनियंत्रित शासन-पद्धति के कारण जनता के मन में जो अशांति अथवा अस्थिरता उत्पन्न हुई है, उसे व्यक्त करने वाले प्रजा के नेताओं के लेखों अथवा भाषणों का बम के गोले फेंकनेवालों के सिरफिरेपन से संबंध जोड़ना हमारी राय में अत्यंत नीचता पूर्ण कृत्य है···''

> "भारत में राजनीतिक अत्याचारों की यह पद्धति प्रथम बार ही दिखाई दे रही है यह सत्य है, किन्तु जब रूस, जर्मनी, फ्रांस, आयरलैंड इत्यादि राष्ट्रों की क्रांति का इतिहास प्रतिदिन हमारे सामने आ रहा है, तब यह कैसे हो सकता है कि हमारे देश के किसी भी व्यक्ति को उसका अनुसरण करने की बुद्धि न हो ? सारांशतः जिन-जिन राष्ट्रों में गैर-

ज़िम्मेदार तथा अनियंत्रित अधिकारी वर्ग—चाहे वह स्वदेशी हो चाहे विदेशी—निरंकुश होकर जनता पर अपनी सत्ता थोपता हो, उन राष्ट्रों की प्रजा हमेशा असंतुष्ट ही रहेगी। उस प्रजा की माँगें बार-बार अशिष्टतापूर्वक कुचली जाने पर कुछ व्यक्तियों की प्रवृत्ति हिंसा की ओर अवश्य अग्रसर होगी। इतिहास इस बात की गवाही देता है। हमें यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत में हुई घटना इतिहास की इस धारा के विपरीत नहीं है···प्रजा में राजकीय असंतोष कभी भी अकारण नहीं होता। राष्ट्र की शासन पद्धति में जो दोष होते हैं, उसी के फलस्वरूप यह आन्दोलन भड़क उठता है। किसी व्यक्ति द्वारा आक्रोश के अतिरेक में विवश होकर किसी अधिकारी की हत्या कर देने पर क्रांति को ज़ुल्म से दबाने का प्रयत्न करने का परिणाम जनता में और अधिक रोष निर्माण करने में होगा।"

(दोहरा इशारा)

"बम के गोले का वास्तविक अभिप्राय समझने के लिए बम फेंकने वालों का पक्ष भारत में किन कारणों से पैदा हुआ, भारत में यह कब तक टिकेगा और इस पक्ष का प्रभाव राज्य शासन एवं जनता पर क्या होगा, इन तीनों परिस्थितियों पर शांतिपूर्वक विचार करना होगा। 'बम-पक्ष' का जन्म किस परिस्थिति में हुआ, इस विषय में अब सभी विचारशील लोगों में सहमति हो गयी है, ऐसा लगता है। शासन अधिकारियों के अत्याचारों तथा जनमत से लापरवाही का आचरण करने की जिद से इस पक्ष का जन्म हुआ है। अधिकारी वर्ग ने बंगाल पर इतने अत्याचार किये कि बंगाली युवक वर्ग का क्रोध पागलपन की सीमा तक पहुँच गया, जिसके कारण पहला बम विस्फोट हुआ। अतः इस अनर्थ की ज़िम्मेदारी राजनीतिक आंदोलनों, लेखों या भाषणों पर नहीं अपितु शासक वर्ग की अविवेकपूर्ण ज़िद पर डालनी चाहिए। बम के गोलों का इलाज जनता के अधिकार नष्ट करके नये अत्याचारी नियम लागू करना नहीं अपितु जनता को महत्त्वपूर्ण अधिकार देकर उसकी सुख संपत्ति में वृद्धि करना है।

बंगाली जनता ने उचित मार्गों से बंगाल के विभाजन के विरुद्ध आंदोलन किया, जो पूर्णतः निष्फल हुआ। इतना ही नहीं, जब स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा इत्यादि जैसे शांतिप्रिय तथा स्वावलंबी कार्यक्रमों द्वारा यह प्रदेश उन्नति के पथ पर अग्रसर होने लगा तब उनके स्वदेशाभिमान से चिढ़कर कुछ गोरे अधिकारियों ने मुसलमान गुंडों द्वारा बंगालियों की संपत्ति और स्त्रियों की इज्जत लुटवाई। इन अधिकारियों ने ही अपने विरुद्ध काम करनेवालों से बदला लेने की नीति का पाठ बंगाल के युवकों को पढ़ाया है। जैसा बीज बोओगे वैसा ही फल पाओगे। अधिकारी वर्ग का सिर फिर गया है, बंगाली युवक ने भी वही रास्ता अपनाया।"

× × ×

"बम के गोलों से किसी भी शासन की सैन्य सामर्थ्य नष्ट नहीं होती, बम के गोलों में सेना को पंगु बनाने की शक्ति नहीं है, किन्तु सैन्य सामर्थ्य के दर्प के कारण जो अव्यवस्था फैलती है, उसकी ओर शासन का ध्यान बम के गोलों से आकर्षित होता है।"

(बम के गोले का रहस्य)

"भाषण एवं प्रकाशन की स्वतंत्रता से राष्ट्रों का जन्म व पोषण होता है। इन दोनों की मदद से भारत राष्ट्र को बनाने का प्रयत्न होता देख इन्हीं पर प्रहार करने की अधिकारी वर्ग की अनेक दिनों से इच्छा थी, और बंगाल के बम विस्फोट का लाभ उठाकर उन्होंने अपनी इस इच्छा की पूर्ति की है। अब प्रश्न यह है कि क्या इस अत्याचारी नीति से अधिकारी वर्ग की मनोकामना पूर्ण होगी?

"पुर्तगाल में हुए बम विस्फोट से पुर्तगाल की राज्य पद्धति में फेर बदल हुई। और उस नये राज्य के मंत्रियों को उनकी अत्याचारी नीति छोड़नी पड़ी। रूस के शक्तिशाली ज़ार को भी बम के गोलों के सामने मस्तक झुकाना पड़ा और ड्यूमा सभा को तोड़ने का प्रयत्न करते-करते अंत में ड्यूमा सभा स्थापित करनी ही पड़ी। पुर्तगाल में बम विस्फोट बंद हुए अथवा रूस में बमों की माला अधिक न बढ़ सकी, इसका श्रेय अत्याचार की नीति को नहीं दिया जाएगा। जनता में नवीन महत्त्वाकांक्षाएँ पैदा हुई हैं और वे प्रतिदिन बलवत्तर होती जा रही हैं। ऊपर निर्दिष्ट राष्ट्रों के राजनैतिक लोगों ने इन बम के गोलों का अर्थ समझा तथा जनता की इच्छाओं व महत्त्वाकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए, शासन के कार्यभार का स्वरूप इस प्रकार बदल डाला, जिससे कि लोग निराश होकर आंतकवादी न बनें।"

(ये उपाय स्थायी नहीं)

"दुनिया की सबसे प्रिय वस्तु अपनी जान ही होती है। यह न्याय सामान्यतः खरा है, परन्तु कर्म, नीति, परोपकार, स्वाभिमान, कुटुम्ब तथा राष्ट्र की मर्यादा का विचार, देशभक्ति इत्यादि उच्च कल्पनाओं की क़ीमत प्राणों से भी अधिक है, ऐसा यदि व्यक्ति को महसूस होने लगे, तो यह उसकी आत्मिक उन्नति का प्रमाण ही है। इस प्रकार की मनोवृत्ति का उदय यदि राष्ट्र में होने लगे तो शासन अधिकारियों का कर्तव्य है कि इस प्रवाह के लिए रास्ता बनाएँ। इसके विपरीत यदि वे अत्याचार व ज़बरदस्ती के बल पर उसे मिटाने का अथवा विशाल बाँध खड़े कर उसे

> रोकने का प्रयत्न करने लगें तो इसे उस राष्ट्र की प्रजा व शासक वर्ग का दुर्दैव ही समझना चाहिए।”
>
> (पत्रकार की स्फुट सूचनाएँ)

लोकमान्य तिलक को राजद्रोह के आरोप में जुलाई, 1908 में 6 वर्ष की काले पानी की सजा सुनाई गई। कोर्ट में गवाही के लिए पेश किये गये लेखों के कुछ अंश आपने ऊपर देखे ही हैं। खाडिलकर की तेजस्वी लेखनी के विषय में उनके एक साथी नरसिंह चिंतामण केलकर अपने ‘गतगोष्ठी’ नामक आत्मचरित में लिखते हैं :—

> “कृष्णाजी खाडिलकर के कुछ लेख लोकमान्य तिलक के लेखों से भी अधिक ओजस्वी होते थे और बाहर के लोगों को लेखक का नाम मालूम न होने के कारण तिलक को प्रशंसा का उपहार मिलता था।”

पुनः एक बार, तिलक की अनुपस्थिति में ‘केसरी’ का कार्यभार तथा राष्ट्रीय पक्ष के मार्गदर्शन की दुहरी ज़िम्मेदारी खाडिलकर के ऊपर आ गयी। इस बार यह ज़िम्मेदारी निभाना और भी अधिक कठिन कार्य था। परिस्थितियाँ अत्यंत विस्फोटक थीं। राजनीतिक घटनाएँ अब अखिल भारतीय हो गयी थीं। किन्तु ढाई वर्ष तक खाडिलकर ने यह उत्तरदायित्व अत्यंत कुशलतापूर्वक निभाया।

जब लोकमान्य तिलक को सजा सुनायी गयी तब बंबई में मजदूरों ने दंगे किये। खाडिलकर ने ‘केसरी’ में इन दंगों का बड़ा मार्मिक विश्लेषण किया। शासन का सेवक विवश होता है। अधिकारियों की मेहरबानी के बिना पेट पालने की क्षमता पास न हो तो समाज राजनैतिक आंदोलनों में सक्षम नहीं हो सकता। गुजराती व्यापारी व बंबई के कामगार अपनी जीविका के लिए सरकारी हुकूमत के आश्रित न होने के कारण अपना स्वाभिमान जागृत रख सके। इसी कारण राष्ट्रीय पक्ष के नेताओं ने सरकारी नौकरी को हमेशा निषिद्ध समझा।

महाराष्ट्र में जब अकाल पड़ा तब तिलक-पक्ष ने गाँव की जनता को भी राष्ट्रीय आंदोलनों में सम्मिलित करने का प्रयत्न किया। अब बंबई का मज़दूर वर्ग भी इस प्रवाह में आ मिला था। स्वतंत्रता आंदोलन को अधिक-से-अधिक व्यापक करने का प्रयत्न यशस्वी हो रहा था।

राष्ट्रीय पक्ष की राजनीति अब संपूर्ण भारत की राजनीति बन गई थी। खाडिलकर की निरीक्षक दृष्टि किस प्रकार चारों ओर देखती रहती थी, इस बात का सहज अनुमान उनके इस समय के लेखों को पढ़ने से लगाया जा सकता है। **‘वर्षाचे आता पारडे फिरले’** शीर्षक लेख इस दृष्टि से मनन करने योग्य है, जिसमें उन्होंने दिसंबर, 1908 से दिसंबर, 1909 की एक वर्ष की अवधि की भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों का युक्तिपूर्ण एवं सूक्ष्म पर्यालोचन प्रस्तुत किया है। साथ ही, राष्ट्रीय पक्ष की राजनीति भविष्य में किस प्रकार प्रभावी और यशस्वी होने वाली है, इसकी भी सूचना दी है। खाडिलकर लिखते हैं :

> “सारांशतः दिसंबर 1908 से शुरू होकर 1909 के दिसंबर माह आने से पूर्व ही मोर्ले साहब के झंडे के इर्द-गिर्द चल रहा मवालियों (नरम पक्ष) का नाच-गाना थम गया। सुधार कार्यों का अभिनंदन करके उनके लिए खुलेआम हर्ष प्रकट करनेवाले तथा राष्ट्रीय सभा में सुल्तान शाही चलाने में अग्रणी सर फ़िरोजशाह मेहता जैसे अत्यंत स्वाभिमानी को भी पीछे हटकर त्यागपत्र देना पड़ा, और इस कारण अपने अनुयायियों का प्रकट अथवा प्रच्छन्न धिक्कार सहना पड़ रहा है; यह राष्ट्रीय पक्ष की विजय का प्रारंभ है, ऐसा सभी समझदार व विचारशील लोग निःसंशय मानेंगे।
>
> “एक वर्ष की अवधि में ही ‘मवाल’ पक्ष के राष्ट्रीय पक्ष की ओर झुकनेवाले पलड़े की गति पूर्ण होने में अब एक ही बात की कमी रह गई है। मोर्ले साहब की ही दी हुई गठरी अपने सिर पर रखकर यहाँ लाने वाले नेता गोखले भी यदि उसे फेंककर मोर्ले साहब को सीजर की तरह ‘गोखले क्या तुम भी !’ कहने पर मजबूर कर दें; और इस वर्ष नहीं तो अगले वर्ष कांग्रेस का संयुक्त अधिवेशन बुला करके कलकत्ते के चार निर्णय अनुमोदित कर लिये जायें‥‥तब सूरत के दंगे फ़साद से एक महान राष्ट्रीय कार्य पूर्ण हुआ, ऐसा कहा जा सकेगा।”

तिलक की अनुपस्थिति में ‘केसरी’ (मराठी) और ‘मराठा’ (अंग्रेज़ी) पत्रिकाओं के संपादन कार्य के साथ राष्ट्रीय पक्ष के नेता के रूप में खाडिलकर दुहरी भूमिका अत्यंत कुशलता से निभा रहे थे। परन्तु खाडिलकर के कारण ये दोनों समाचार पत्र संकट में आ पड़ेंगे, ऐसी भ्रामक कल्पना करके, उनसे पूछे बिना ही, नरसिंह चिंतामण केलकर ने घोषणा-पत्र अपने नाम कर लिया। यह घटना खाडिलकर के स्वाभिमानी स्वभाव को असह्य लगी। वे उसी समय ‘केसरी’ के कार्यालय से बाहर आ गए। लोकमान्य के वापस आने तक उन्होंने कार्यालय में पैर तक नहीं रखा।

अब खाडिलकर के सामने उदर-निर्वाह की समस्या खड़ी हुई। सरकारी नौकरी वे करना ही नहीं चाहते थे। देश सेवा तथा जन शिक्षा के व्रत से उन्हें मुँह भी न मोड़ना था। ताकि मनोरंजन एवं जन शिक्षा दोनों कार्य एक साथ हो सकें, ऐसे नाटक लिखकर उदर-निर्वाह की कठिनाई दूर करने का उन्होंने

निश्चय किया। लोकमान्य तिलक की अनुपस्थिति के इस कालखंड में उन्होंने नाटककार के रूप में अत्यधिक ख्याति प्राप्त की।

जून 1914 की मध्य रात्रि के बाद उन्हें तिलक की जेल से वापसी का संदेश मिला। खाडिलकर अपने बच्चों को साथ लेकर उनके दर्शनार्थ निकले। लोकमान्य के दर्शन से उनकी पुरानी मनोवृत्तियाँ पुन: जाग्रत हो उठीं। कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर पुन: 'केसरी' के काम में लग गए। लोकमान्य के साथ काम करने में असाधारण आनन्द था।

तिलक के जेल से छूटने की खुशी में सभी प्रांतों में सत्कार तथा अभिनन्दन के आयोजन किये जा रहे थे। पुणे में कृष्णाजी व शिवरामपन्त ने ऐसे आयोजनों पर व्याख्यानों की झड़ी लगा दी। 'तिलक महाराज की जय' से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। पुणे के जिला मजिस्ट्रेट ने तिलक की जयजयकार व उनकी तस्वीर के साथ जलूस निकालने पर तत्काल पाबन्दी लगा दी।

इतने में दिनांक 4-8-1914 को यूरोप में विश्वयुद्ध की रणभेरी बज उठी। अंग्रेजी सरकार को अब सभी पक्षों की सहानुभूति की आवश्यकता महसूस होने लगी।

महायुद्ध के कारण प्राप्त हुए इस अवसर का लाभ उठाना ही बुद्धिमानी थी। लोकमान्य तिलक ने मतभेदों को भूलकर कांग्रेस से मिल जाने का निर्णय लिया। उनके कुछ साथी इसका विरोध कर रहे थे। तिलक ने इस वाद-विवाद का फैसला बेलगाँव की सभा परिषद् में करने का निश्चय किया।

प्रत्यक्ष अधिवेशन शुरू होने से पूर्व इस प्रस्ताव पर हर गुट में गुप्त चर्चाएँ चल रही थीं। लोकमान्य तिलक ने हर एक दृष्टि से विचार करने के पश्चात् राष्ट्रीय सभा में जाने का निश्चय किया था। इस विषय पर चल रही चर्चाएँ अब निर्णायक सीमा पर पहुँच रही थीं। ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न के समय अपने पक्ष के लोगों में मतभेद की धूल न छा जाये, खाडिलकर भी ऐसा ही चाहते थे। इससे संपूर्ण राष्ट्र को भी हानि पहुँचेगी, यह उनकी धारणा थी। लोकमान्य की निर्णायक बुद्धि पर उन्हें पूर्ण विश्वास था। अत: लोकमान्य का विरोध करनेवालों की विरोधी भूमिका में उतरकर, उन्होंने तिलक के प्रस्ताव को लोगों का पूर्ण अनुमोदन मिले—ऐसे वातावरण का निर्माण किया और अन्त में सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव पास भी हो गया।

इसी समय 'होमरूल लीग' की स्थापना करके लोकमान्य तिलक ने प्रत्यक्ष आन्दोलन का आरम्भ कर दिया। लखनऊ कांग्रेस (दिसम्बर, 1916) में सब पक्षों का एकत्रित प्रस्ताव स्वीकृत कराकर लोकमान्य तिलक 'होम रूल' के प्रचार के दौरे पर निकल पड़े। 'होमरूल लीग' के प्रचार दौरे में खाडिलकर ने उत्साह एवं आवेश से काम किया। इस दौरे में स्वराज्य की माँग के साथ

सेना में भरती होने के प्रश्न पर भी भाषण दिये जाते थे। खाडिलकर ऐसे विषय अत्यन्त कुशलता से सामने रखते थे। स्वराज संघ के 'होमरूल' के दौरे बहुत सफल हुए। इस कार्य में लोकमान्य के दाहिने हाथ के रूप में खाडिलकर की हर किसी ने भरपूर प्रशंसा की।

परन्तु सभी का विचार यह था कि आंदोलन के आगामी कार्यक्रम विदेशों में भी करना आवश्यक है। विलायत में कार्यरत बै० बैप्टिस्टा का भी यही आग्रह था। चिरोल के मुकदमे को ध्यान में रखते हुए भी तिलक का विदेश जाना ही ठीक था। अत: देश के अनेक हिस्सों के दौरे करने के बाद, तिलक ने विलायत जाने का निश्चय किया। पुन: एक बार 'केसरी' के संपादन की ज़िम्मेदारी खाडिलकर पर आ पड़ी।

नवम्बर, 1919 में विलायत से वापस आने के बाद लोकमान्य अधिक दिन जीवित न रह सके। अल्प अवधि की बीमारी के पश्चात् ही 1 अगस्त, 1920 को उनका स्वर्गवास हो गया।

खाडिलकर अपने आपको तिलक के सच्चे अनुयायी मानते थे। तिलक के जीवन काल में इन्होंने उनकी राजनीति को निष्ठापूर्वक निभाया। लोकमान्य की देशभक्ति व नेतृत्व के लिए उनके मन में नितांत आदर भाव था। लोकमान्य के लिए काम करने का मतलब देश के लिए कार्य करना है– ऐसा मानकर उनकी प्रत्येक छोटी-बड़ी क्रांति में खाडिलकर ने अंतरंग भाव से योगदान किया।

कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर जितने महान् देशभक्त थे उतने ही महान् तिलक भक्त भी। देशभक्ति एवं तिलक भक्ति उनके व्यक्तित्व में जैसे एकरूप हो गयी थी।

देशभक्त

(गांधी युग)

होमरूल शिष्टमण्डल लेकर लोकमान्य तिलक इंगलैंड गये थे। इसी समय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ और मित्र देश विजयी हुए। ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर विजय का उन्माद चढ़ा। तिलक ने चिरोल पर जो मानहानि का दावा किया था, उसका फैसला उनके विपक्ष में दिया गया। इस खर्च से उन पर बहुत अधिक आर्थिक बोझ आ पड़ा। खाडिलकर व तिलक के अन्य चाहनेवालों ने मिलकर तिलक-पर्स फंड की योजना बनाई। योजना कामयाब हुई और तिलक पर पैसे का बोझ कम हुआ।

लोकमान्य तिलक जब विलायत में थे, तब भारत में बड़ी-बड़ी घटनाएँ घटीं। सरकार ने संपूर्ण राष्ट्र के विरोध की उपेक्षा करके रॉलेट बिल पास कर दिया। इसके निषेधार्थ गांधीजी ने सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया। इससे कहीं-कहीं दंगे फसाद भी हो गये। अमृतसर में कुछ गोरे लोग मारे गये। इसका बदला लेने के लिए जनरल डायर ने जलियांवाला बाग में गोलियों की बौछार करके निरपराध भारतीयों की बलि चढ़ाई। सारे पंजाब में सेना का शासन अमल में लाया गया। चारों ओर लोगों के साथ अमानुषिक व्यवहार होने लगा। खाडिलकर ने गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन से संबंधित लेख लिखकर 'केसरी' द्वारा प्रचार व प्रसार का कार्य जारी रखा। 'मुंबई-दिल्ली चा हरताल' (8 अप्रैल, 1919); 'धामधुमीचा आठवडा' (15 अप्रैल, 1919) 'सत्याग्रहाला सुळी का चढ़वता' (22 अप्रैल, 1919); 'अकाल-विकालशिक्षा' (15 जुलाई, 1919), आदि लेख इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं।

मॉण्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार कार्य करवाना तथा स्वराज्य के लिए संघर्ष चालू रखना तिलक के विचार में योग्य था। सुधार कार्य अमल में लाने के लिए चुनाव करवाना और बड़े पैमाने पर प्रचार कार्य करना आवश्यक था। लो० तिलक ने 'केसरी' को नया तथा स्थायी प्रारूप देने का निश्चय किया। प्रचार के प्रभावशाली साधन के रूप में 'केसरी' को सप्ताह में दो बार प्रकाशित करने

का निश्चय किया गया। खाडिलकर के अनुभव को ध्यान में रखते हुए तिलक की इच्छा इस द्विसाप्ताहिक 'केसरी' का सम्पादन उन्हें सौंपने की थी। अतः इस संबंध में उन्होंने स्वयं खाडिलकर से बात की। खाडिलकर ने यह जिम्मेदारी स्वीकार कर ली। अलग-अलग प्रांतों में कौन्सिल की सभा सदस्यता के लिए नाम देते समय तिलक ने बंबई कौन्सिल में खड़े होने के लिए खाडिलकर का नाम भी निश्चित किया था।

लोकमान्य की मृत्यु के पश्चात् तिलक के पुत्रों ने 'केसरी' का नया ट्रस्ट बनाया। इस ट्रस्ट में कहीं भी खाडिलकर का नाम न था। 'केसरी' अथवा 'मराठा' इन दोनों में से किसी एक पत्र का सम्पूर्ण कार्य भार उन्हें सौंपा जाये खाडिलकर का यह निवेदन भी उन्हें मान्य नहीं हुआ। इस प्रकार खाडिलकर का 'केसरी' से हमेशा के लिए संबंध टूट गया।

परन्तु इस कारण को लेकर वे राजनीति से निवृत्त न हुए। देशभक्ति व देश सेवा अब उनके हृदय के स्थायी भाव बन चुके थे। तिलक की मृत्यु के बाद, 'किसका शिष्यत्व स्वीकार किया जाय अथवा किसकी राजनीति का अनुसरण किया जाय' प्रश्न यह नहीं था। इससे पहले भी वे महात्मा गांधी के आंदोलन तथा उनकी राजनीति की ओर आकृष्ट हुए थे। राजनीति की यह नवीन शक्ति लोकमान्य के कार्य का ही नया तेजस्वी रूप है, ऐसी उनकी मान्यता थी।

लोकमान्य की मृत्यु से कुछ पहले बंबई में राष्ट्रीय पक्ष की ओर से एक दैनिक पत्र शुरू करने का विचार किया गया था। उनकी मृत्यु के पश्चात् इस इच्छा ने और जोर पकड़ा। तिलक की स्मृति के रूप में उनके कुछ अनुयायियों ने 'लोकमान्य पब्लिशिंग कंपनी' नामक संस्था स्थापित की तथा संस्था की ओर से 'लोकमान्य' नाम का मराठी दैनिक पत्र शुरू करने की योजना तैयार की। इस प्रकार के दैनिक पत्र की शुरुआत करने के लिए उत्तम एवं योग्य संपादक को बहाल किया जाना भी अनिवार्य था। खाडिलकर के 'केसरी' छोड़ने का पता लगते ही उनसे इस नये काम के लिए अनुरोध किया गया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

'केसरी' से अलग हो जाने पर भी सिंह की गर्जना रुकी नहीं। पुणे से विदा लेकर खाडिलकर अपने परिवार के साथ बंबई आ गए। 19 मार्च, 1921 को 'लोकमान्य' पत्र के संपादक पद की संपूर्ण जिम्मेदारी उन्होंने उत्साह पूर्वक स्वीकार कर ली।

बंबई उनके लिए नयी जगह थी। नये स्थान पर नई जिम्मेदारी! साथ ही, नयी राजनीति के तकाजों को समझकर जनता का योग्य मार्ग दर्शन करने की आवश्यकता भी! खाडिलकर ने अथक परिश्रम किया। नये लोगों और नयी-नयी संस्थाओं से संबंध जोड़कर बहुत थोड़ी अवधि में बंबई के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन से वे घुल-मिल गये।

जीवन की दिशा अब निश्चित हो चुकी थी। महात्मा गाँधी को उन्होंने अपना राजनीतिक गुरु मान लिया था। बंबई की कांग्रेस समिति के एक प्रमुख कार्यकर्ता के रूप में उन्होंने कार्य शुरू किया।

1921 की पहली अगस्त को लोकमान्य की प्रथम पुण्य-तिथि के दिन कांग्रेस ने 'असहयोग आंदोलन' का आरम्भ किया। खाडिलकर ने इसी अवसर पर अपनी पगड़ी उतारकर सिर पर खादी टोपी रखी। और तब से वह हमेशा उनके साथ रही।

महात्मा गांधी के आंदोलन को लेकर महाराष्ट्र में मतभेद दिखाई पड़े। तिलक पक्ष में फूट पड़ गई। कुछ लोगों के विचार में गाँधीजी की राजनीति तिलक की राजनीति से भिन्न थी। कुछ को तो वह भिन्न ही नहीं, परस्पर विरोधी भी मालूम होती थी। खाडिलकर व उनके कुछ साथियों के विचार में गाँधीजी तिलक की राजनीति को ही आगे बढ़ा रहे थे। खाडिलकर के पक्ष में शिवराम पंत परांजपे, गंगाधरराव देशपांडे, वीर वामनराव जोशी, कुलगुरु चिंतामणराव वैद्य जैसे महत्त्वपूर्ण भारतीय साथी थे।

तिलक व गांधी दोनों ही पक्के स्वराज्यवादी थे। स्वराज्य पाने के लिए 'साधनानाम् अनेकता' यह तिलक की नीति थी। गाँधी जी का आंदोलन नये-नये मार्गों से स्वतंत्रता की ओर अग्रसर हो रहा था। स्वदेशी, स्वावलंबन, बहिष्कार, अंग्रेजी कायदों का उल्लंघन, राष्ट्रीय शिक्षा जैसे कुछ कार्यों का आरंभ तिलक पहले से ही कर चुके थे। उनकी युद्ध प्रिय वृत्ति अब विराट लोक स्वरूप प्राप्त कर रही थी।

कौन्सिल प्रवेश की योजना तिलक ने बनाई थी, किन्तु परिस्थिति के अनुसार वे उसे बदल भी सकते थे। गाँधीजी के आन्दोलन में नवीनता तथा अत्याचार के विरुद्ध लड़ने की वृत्ति तिलक ने पहचानी थी। विलायत से लौटने पर बबंई की शांताराम चाल की जोरदार स्वागत सभा में उन्होंने कहा, "यहाँ का सारा वृत्तांत मुझे मालूम हुआ है। इस बात का मुझे बहुत खेद है कि रौलेट बिल के विरोध में गाँधीजी ने जो सत्याग्रह किया, उसमें हिस्सा लेने के लिए मैं उपस्थित न था।" खाडिलकर ने अपने आत्मनिवेदन में इस संबंध में अधिक स्पष्ट रूप में लिखा है :

> "लोकमान्य तिलक के निधन से पूर्व कलकत्ता की राष्ट्रीय सभा के पूरक अधिवेशन के लिए लोकमान्य का नाम प्रस्तुत किया गया था। परन्तु लोकमान्य अध्यक्ष पद स्वीकार करने को तैयार न थे। तब, 'आपका नाम सूचित किया जा रहा है, आप अध्यक्ष पद स्वीकार क्यों नहीं करते'—मैंने यह प्रश्न उनसे किया था। उनका उत्तर था, "महात्मा गाँधी के रूप में

> एक प्रचंड शक्ति राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कर रही है और कलकत्ते का असहयोग आंदोलन अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है। ऐसे समय में अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठकर अधिवेशन चलाने के कार्य में बँध जाने की अपेक्षा चर्चा में हिस्सा लेने के लिए मुक्त रहना मेरे लिए अधिक ज़रूरी है। इस वार्तालाप से मुझे लगा कि महात्मा गांधी के नये आयुध ने उनका संपूर्ण ध्यान केन्द्रित कर लिया था।"

महाराष्ट्र में तिलक पक्ष के लोगों में आपसी मतभेदों का यह रूप कौन्सिल के बहिष्कार के मामले में अधिक स्पष्ट हो गया। इसी में से महाराष्ट्र के 'फेरनाफेर' वाद-विवाद का जन्म हुआ। राष्ट्रीय सभा में पारित किए गए असहयोग प्रस्ताव के बारे में पुन: विचार होना चाहिए, ऐसा कहने वाले 'फेरवादी' कहलाए और बिना किसी परिवर्तन के मूल प्रस्ताव को मान्यता दी जाए, ऐसा कहने वाले 'नाफेरवादी' कहलाये। 16 और 17 अप्रेल, 1922 को पुण में महाराष्ट्र परिषद् की सभा हुई। खाडिलकर इसके अध्यक्ष थे। इस अवसर पर उन्होने जो विचार रखे वे इस प्रकार थे।—

> "आज की राज्य परिषद् का प्रसंग अन्य समय की परिषदों से अत्यंत भिन्न है, क्योंकि इस वर्ष की परिषद् में आगे दिये हुए कार्यक्रम की रूपरेखा बनानी है। यह आपको याद रहे कि मैं केवल सीधे मार्ग से चलने वाला—अन्य लोगों द्वारा बनाए गए मार्ग पर चलने वाला—मनुष्य हूँ। सीधी राह पर जाने वाले आदमी की जो विचार धारा होती है, वही मेरी मनोवृत्ति है। मैं महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक, असहयोग वाली विचार धारा का अनुयायी हूँ। लोकमान्य तिलक की सेवा करते समय मुझे जो शिक्षा मिली, वह मैं आज तक रत्तीभर भी नहीं भूला; उनके वैचारिक तत्त्वों से मैं यत्किंचित् भी कृतघ्न नहीं हुआ हूँ।
>
> "महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अब राष्ट्रीय आंदोलन को नई दिशा मिली है। देश के लोगों ने बड़े धैर्य के साथ कारावास को तुच्छ मानकर खादी के छोटे-से कपड़े के जोर से तानाशाह सरकार के शस्त्रों को नाकाम कर दिया है।···आज जो नवजागृति उत्पन्न हुई है, उससे प्रतिमाह हजारों रुपये कमानेवाले श्री दास, बादशाही शान से रहने वाले पंडित मोतीलाल नेहरू ने फ़क़ीरी क़बूल की है। रौलेट ऐक्ट के क़ायदे जमीन में दफ़ना दिये गये हैं। कुछ लोग खादी की हँसी उड़ाते हुए पूछते हैं कि सूत से स्वर्ग कैसे मिलेगा ? परन्तु ब्रिटिश पार्लियामेंट में हमारे संघटित बहिष्कार से स्वयं प्रधानमंत्री को रोना आ रहा है। यही है, खादी की महिमा। उसके लिए मन में शंका न लायें। महात्मा जी को जेल गये अभी एक महीना भी नहीं

> हुआ, ऐसी घड़ी में उनके पीछे कार्यक्रम में फेर-बदल का विचार करना क्या उचित होगा ?''

खाडिलकर के संपादन में 'लोकमान्य' पत्र में 'नाफेरवादी' पक्ष के विचार स्पष्ट तथा कुछ आक्रामक स्वरूप में दिए जाने लगे । धीरे-धीरे 'लोकमान्य' दरबार बंबई के गाँधीवादी लोगों का प्रमुख अड्डा बन बैठा । यह बात 'लोकमान्य पब्लिशिंग कंपनी' के 'फेरवादी' लोगों को अच्छी न लगी। उन्होंने अपने अधिकारों का प्रयोग कर खाडिकर के सम्पादकीय कार्य में दखल देना शुरू कर दिया। इसके निर्देशकों की एक सभा में उनका उपहासार्थक शब्दों में अपमान किया गया—'' 'लोकमान्य' पत्र का यश लोकमान्य के नाम का यश है । इसे कोई अपना ही यश न समझ बैठे ।''— ये वाक्य खाडिलकर के लिए कहे गये ।

'लोकमान्य पब्लिशिंग कंपनी' के साथ अपना निर्वाह कठिन जानकर खाडिलकर ने उसे छोड़ने का निर्णय लिया। आधी रात्रि के आसपास वे कार्यालय से बाहर आये। स्वाभिमान छोड़कर लाचारी से जीवन व्यतीत करना उनके स्वभाव में ही न था। 'आगे क्या?' यह सोच बिचार किए बिना ही वे 'लोकमान्य' के कार्यालय से बाहर निकल आये थे । आगे क्या करना है, इसका विचार तो उन्होंने बाद वाली रात्रि में किया। दूसरे दिन जब खबर फैली तब पत्नी ने प्रश्न किया 'आगे क्या होगा ?' तुरन्त उत्तर मिला—''दूसरा दैनिक पत्र शुरू करेंगे। 'नवाकाळ' नाम से।''

अपना स्वतंत्र दैनिक शुरू करना आसान कार्य न था। परन्तु एक बार जो निर्णय ले लिया, उसे संपूर्ण शक्ति लगाकर सफल बनाना खाडिलकर का स्वभाव था।

पहला प्रश्न था पैसे का। पत्रकारिता के कार्य में खाडिलकर ने पैसा इकट्ठा नहीं किया। इस व्यवसाय के पीछे केवल देशसेवा की भावना थी। इसीलिए यहाँ उन्हें अधिक अर्थ प्राप्ति की आकांक्षा न थी। 'लोकमान्य' में उन्हें प्रतिमाह पाँच सौ रुपये वेतन देना तय हुआ था। परन्तु पत्र की प्रारम्भिक अवस्था को देखते हुए वे केवल तीन सौ रुपये लेते थे।

कुछेक धनवान उनके नये दैनिक पत्र के लिए पैसों का पूरा खर्च उठाने को तैयार थे किन्तु खाडिलकर किसी की गुलामी नहीं चाहते थे। अतः कुछ साथियों की मदद से केवल अपने विश्वास के बल पर एक महीने के अन्दर उन्होंने नया दैनिक पत्र 'नवाकाळ' शुरू किया। प्रथम अंक का प्रथम अग्रलेख उन्होंने ''स्वत: संबंधी'' शीर्षक से लिखा। इस लेख की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> ''वाचकों से रा० खाडिलकर के लेखों का एक नये रूप में आज पुन: परिचय हो रहा है। यह परिचय नवीन अवश्य है परन्तु सन् 1896 से लिखे जा रहे रा० खाडिलकर के लेखों के विचारों से परिचय कराने की आवश्यकता नहीं है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का शिष्यपद स्वेच्छा व आनन्द से स्वीकार कर, जिन विचारों को अंगीकार करके श्री खाडिलकर ने अपनी विचारबुद्धि को जो दिशा प्रदान की, वह सद्गुरु का महाप्रसाद ही है, ऐसा रा०खाडिलकर का दृढ़ विश्वास है। पिछले दो वर्ष 'लोकमान्य' पत्र के संपादक के नाते वर्तमान नये युग में उन्होंने जो विचार-नीति अपनायी, वही नये पत्र के रूप में आज से पाठकों के आगे रखी जा रही है।
>
> ''म० गाँधी द्वारा चलाया हुआ असहयोग आंदोलन लोकमान्य तिलक की विचार नीति का परिपक्व रूप ही है, यह सभी विचारशील लोगों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। जिस वृक्ष का बीजारोपण लोकमान्य तिलक ने किया, जो वृक्ष उनके जीवन काल में ही बढ़कर फूलने-फलने लगा तथा जिस वृक्ष का पूर्ण स्वरूप महात्मा गाँधीजी के आन्दोलन के कारण जनता की दृष्टि में आया, उसी वृक्ष की छाया में बैठकर 'नवाकाळ' प्रतिदिन अपना कार्य सम्पन्न करेगा…''

वृत्तपत्र का प्रपंच याने देश सेवा के लिए निकली हुई पद यात्रा! लोकमान्य तिलक के समान खाडिलकर ने भी अपने आसपास के सभी लोगों को देश सेवा के कार्य में लगा लिया। लोकोपयोगी तथा सभी सार्वजनिक कार्यों व राजनीतिक आंदोलनों में उन्हें अवश्य हिस्सा लेना चाहिए, ऐसा खाडिलकर का कथन था। इसके लिए वे आवश्यक समय तथा यथाशक्ति आर्थिक मदद भी दिया करते थे। गणेशोत्सवों के समय व्याख्यान के आमंत्रण पर वे अनेक बार अपने संपादक परिवार के सदस्यों को भेजते थे। स्वयं उनका भी अनेक सार्वजनिक संस्थाओं से संबंध था। वे अब बंबई प्रदेश की कांग्रेस कमेटी के उपाध्यक्ष थे। बंबई में महात्मा गाँधी द्वारा चलाये गये आंदोलन के होनेवाले प्रत्येक कार्यक्रम में कभी अध्यक्ष तो कभी वक्ता के रूप में वे हिस्सा लेते थे।

'सायमन कमिशन' के बहिष्कार के समय 'नवाकाळ' ने सुचारु रूप से प्रचार करके बहिष्कार आंदोलन की धूम मचा दी। इस आंदोलन में बंबई प्रांत की कांग्रेस कमेटी की ओर से खाडिलकर ने सर्वाधिक योगदान दिया। इन दो चार वर्षों में कांग्रेस में अनेक वाद-विवाद भी हुए। इनमें से जनसाधारण को योग्य मार्गदर्शन देना एक विकट किन्तु महत्त्वपूर्ण कार्य था। महात्मा गांधी के नेतृत्व पर एवं उनके कार्यक्रमों पर खाडिलकर को अटल विश्वास था। उन्होंने जनता के निकट हमेशा ही गांधीजी के कार्यक्रमों की सिफ़ारिश की।

1924 के शुरू में गांधीजी जेल से छूटे। दो वर्ष की कालावधि में उन्होंने अपने कार्यक्रमों के बारे में दीर्घ चिंतन किया होगा ! जेल से छूटने पर उन्होंने राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष मौ० मुहम्मद अली को एक पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने अपना पुराना कार्यक्रम पुन: एक बार राष्ट्र के सामने रखा। उन्हें इसमें कोई भी फेर बदल करने की आवश्यकता नहीं लगी। इस बात से कल्पना की जा सकती है कि महात्मा गाँधी की अनुपस्थिति में खाडिलकर ने हिन्दी जनता का जो मार्गदर्शन किया, वह कितना सही था।

'नवाकाळ' पर पहली बार एक क़ानूनी मुक़दमा सन् 1927 में शोलापुर के दंगे के समाचार के कारण चलाया गया। शोलापुर के उसके पत्रकार ने वहाँ के डी० एस० पी० डंकन मैकडोनल्ड के विरुद्ध एक आपत्ति जनक तार भेजा। 'नवाकाळ' में वह और भी भड़कीले रूप में प्रकाशित हुआ। गोरे अधिकारी ने मान हानि की फ़रियाद की। संपादक होने के नाते संपूर्ण जिम्मेदारी खाडिलकर पर थी। पछतावे के शब्द व्यक्त करने से या माफ़ी माँग लेने से काम बन सकता था। खाडिलकर के लिये यह प्रस्ताव मंजूर होने का प्रश्न ही न था। पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर तथा लोकमान्य के तत्त्वज्ञान का अनुसरण करते हुए सार्वजनिक हित के लिए उन्होंने यह मुक़दमा अंत तक लड़ा।

'नवाकाळ' का दूसरा मुकदमा 1929 में हुआ। असंतोष के सर्वत्र उठ रहे झंझावात में बंबई के मजदूरों ने हड़ताल शुरु कर दी। हड़तालों पर रोक लगाने के लिए 'पब्लिक सेफ्टी बिल' मध्यवर्ती क़ायदे में जारी किया गया। कामगार इससे और भी क्षुब्ध हो उठे। और दंगे हुए। इन दंगों के लिए सरकार ही जिम्मेदार है, ऐसे विचार प्रदिपादित करनेवाला लेख 'मुंबईतील दंगे व बोलशेव्हिक बिल' नाम से 'नवाकाळ' में प्रकाशित हुआ।

बंबई के कुछ साम्यवादी लोगों से भी खाडिलकर के मैत्रीपूर्ण संबंध थे। इन लोगों का कुछ साहित्य खाडिलकर की दत्तात्रेय प्रेस में छपता था। कम्युनिस्ट साम्राज्यवाद के कट्टर विरोधी थे। ब्रिटिश सरकार को खाडिलकर की मजदूर नेताओं के साथ मैत्री सहन न हुई। और अब तो खाडिलकर बंबई के दंगों के मामले में बिना किसी झिझक के मजदूरों का पक्ष लेकर सरकार को आड़े हाथों ले रहे थे !

काफ़ी पहले से ही खाडिलकर का नाम सरकार की काली सूची में था। ऊपर कथित लेख का बहाना लेकर इस बार सरकार ने उनके विरुद्ध राजद्रोह का आरोप लगाकर क़ानूनी कार्रवाई शुरु कर दी। यह लेख तथा कुछ अन्य छोटे-मोटे लिखित संदर्भ आपत्ति जनक सामग्री के नाम से कोर्ट में प्रस्तुत किये गये। फलस्वरूप खाडिलकर को एक वर्ष का साधारण कारावास व दो हजार रुपये का जुर्माना भरने का दंड सुनाया गया।

मुक़दमे के प्रारंभ से खाडिलकर शांत व गंभीर रहे। जिन लेखों के कारण उनपर अभियोग लगाया गया था, वे उन्होंने नहीं लिखे थे। खाडिलकर के 'लोकमान्य' में लिखे हुए लेखों के कारण तिलक को दो बार कारावास भोगना पड़ा था। उसी का प्रायश्चित्त करने का समय अब आ गया है—ऐसा मानकर खाडिलकर के मन को सात्त्विक संतोष ही मिला। कारावास की यह सजा सभी अर्थों में उनकी राजनीतिक तपस्या की पूर्णता थी।

खाडिलकर ने अपने कारावास का समय किसी स्थितप्रज्ञ योगी के से धैर्य व निष्ठा के साथ व्यतीत किया। कभी किसी के समक्ष स्वयं को होनेवाले कष्टों का वर्णन नहीं किया। जेल में उनका बर्तन नियमानुसार ही होता था। जेल के कष्टों से बचने के लिए उन्होंने कभी चालाकी भरा टेढ़ा रास्ता नहीं ढूंढा। उनकी ऐसी धारणा थी कि आत्मक्लेश का मार्ग वैयक्तिक व राष्ट्रीय उन्नति के लिए आवश्यक होता है।

उस समय जेल के क़ैदियों के लिए अलग-अलग वर्ग नहीं होते थे। दीर्घ काल के लिए आये हुए सभी क़ैदी एक साथ रहते थे। अपने साथी बंदियों के दुःखों को समझने की एक परिपाटी-सी उन्होंने बना ली थी। इसी प्रकार से परिचित एक खूनी क़ैदी की सजा पूरी होने पर खाडिलकर ने उसे अपनी प्रेस में नौकरी पर रखा था। उसने 'नवाकाळ' में दस वर्ष तक ईमानदारी से काम किया।

कारावास में दिन का अधिकांश समय खाडिलकर वाचन अथवा चिंतन में व्यतीत करते थे। दर्शन शास्त्र से उन्हें विशेष लगाव था। दर्शन के कुछ चुने हुए ग्रंथों का वहाँ उन्होंने गहरा अध्ययन किया। विशेषत: गीता के अध्ययन से उन्हें मानसिक शांति बनाये रखने में बड़ी मदद मिली। सूत के गोले बनाने का काम उन्होंने अपनी इच्छा से माँगकर लिया था।

खाडिलकर नौ महीने साबरमती के कारागार में रहे। जेल के पास ही, महात्मा गाँधी का आश्रम था। जेल से छूटने पर वे आश्रम गये। महात्मा जी ने उनका बड़े प्रेम से स्वागत किया, तथा उन्हें दो दिन वहाँ रहकर फिर स्वगृह जाने का आग्रह किया। जेल से बाहर आने पर खाडिलकर के स्वागत में जगह-जगह समारोह हुए। बंबई में मजदूरों की ओर से जो स्वागत हुआ, वह विशेष उल्लेखनीय कहा जाएगा।

खाडिलकर का राजनीतिक जीवन कृतार्थ हो चुका था। अब इस क्षेत्र में नयी पीढ़ी के लिए जगह बनाना आवश्यक था। जेल से वापस आने पर उन्होंने 'नवाकाळ' का संपादन-सूत्र अपने हाथ में नहीं लिया।

'नवाकाळ' की व्यवस्था के कार्य में उनका कुछ ध्यान अभी बँधा हुआ था। कांदेवाडी में नई जगह लेकर इसके लिए स्वतंत्र इमारत बनायी गई। खाडिलकर की आकांक्षा थी कि यह इमारत गाँधीजी की राजनीति की एक प्रेरणा-

केंद्र बने। 'नवाकाळ' के लिए कार्य कर रहे अपने मित्रों को उन्होंने इस मार्ग पर चलने का दिग्दर्शन किया।

कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर की उम्र अब लगभग साठ की हो चली थी। इस उम्र में उनसे सक्रिय राजनीति अपेक्षित न थी। उनका हृदय भी अब इस मोहपाश से मुक्त होना चाहता था। किन्तु तन और मन दोनों ही आदत से मजबूर थे।

कानून-भंग सत्याग्रह में वे प्रत्यक्ष हिस्सा न ले सके किन्तु नमक सत्याग्रह के समय उन्होंने अन्य सत्याग्रही नेताओं के साथ बाजार में जाकर नमक का ग़ैर-क़ानूनी विक्रय किया। सरकार ने उन्हें गिरफ़्तार नहीं किया।

राजनीति के क्षेत्र में अब उनकी आवश्यकता नहीं रही, यह वे समझ गये और इससे उन्होंने विदा ले ली।

नाट्याचार्य

सन् 1943 में सांगली में नाट्य शताब्दी मनाने का निश्चय किया गया। सभी की हार्दिक इच्छा थी कि इस अभूतपूर्व उत्सव में खाडिलकर अवश्य उपस्थित हों। खाडिलकर की आयु इस समय सत्तर से ऊपर हो चुकी थी। उनका स्वास्थ्य भी दुर्बल हो चला था। उत्सव में उपस्थित होना संभव न था। उन्होंने महोत्सव के लिए शुभकामना संदेश भेजा। इस संदेश के एक वाक्य में वे कहते हैं—"मैं पहले नाटककार हूँ, बाद में पत्रकार।"

खाडिलकर का प्रथम नाटक "सवाई माधवराव यांचा मृत्यु" था, जो उन्होंने 1893 में बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण होते ही केवल इक्कीस वर्ष की आयु में लिखा था। शेक्सपीयर के नाटकों के अध्ययन से उत्पन्न यह एक उत्कृष्ट साहित्यिक कलाकृति है। इस नाटक को लिखने की प्रेरणा उन्हें कब और कैसे मिली' इसके बारे में वे लिखते हैं :

> "कॉलेज में पढ़ते समय शेक्सपीयर के हैमलेट और ओथेलो नाटक रंगमंच पर देखने के पश्चात् इन नाटकों की ओर मेरा विशेष ध्यान आकृष्ट हुआ। हैमलेट और ईयागो जैसे दो पात्र एक ही नाटक में लाने से सुन्दर नाटक तैयार हो सकता है, यह विचार मेरे मन-मस्तिष्क पर छाया हुआ था। तभी मैंने रा० खरे का 'नाना फडणवीस का चरित्र' पढ़ा; तब जैसा मैं चाहता था, ठीक वैसा ही विचारवान परन्तु विकारग्रस्त हैमलेट मुझे मिल गया।"

'सवाई माधवराव यांचा मृत्यु' एक ऐसा ही, ऐतिहासिक नाटक है।

छत्रपति शिवाजी महाराज के स्वराज्य का पोषण व विस्तार आगे पेशवाओं ने संभाला। परन्तु पेशवाओं को 1761 में उतरी भारत के पानीपत रणक्षेत्र में भयंकर पराजय स्वीकार करनी पड़ी। इसके बाद पेशवा घराने में आपसी झगड़ों की दीमक लग गई और अंत में उनका राजकाज समाप्त हो गया।

पानीपत के युद्ध के बाद, बड़े माधवराव पेशवा ने राज्य की बागडोर सँभालने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु उनका अल्पायु में ही निधन हो गया। इनका कोई पुत्र न होने से छोटे भाई नारायणराव पेशवा गद्दी पर बैठे।

नारायणराव के चाचा राघोबादादा व उनकी पत्नी आनंदीबाई की कुदृष्टि गद्दी पर थी। इसी षडयंत्र में नारायणराव की हत्या हो गयी।

राघोबादादा को पेशवाई हजम न हो सकी। मराठा सरदारों ने यह सारा षडयंत्र खोलकर सामने रख दिया, और उन्हें गद्दी से हटा दिया। नारायणराव पेशवा का नवजात पुत्र सवाई माधवराव के नाम से पेशवाओं की गद्दी पर बैठा।

सवाई माधवराव के युवा होने तक पेशवाई के सारे सूत्र एवं कार्यभार संचालन नाना फड़नवीस के हाथ में था। अत: राजकीय कार्यों व दरबार में उन्हें विशेष महत्त्व मिलना स्वाभाविक ही था। युवा होने पर सवाई माधवराव को यह बात खटकने लगी थी कि राजा होने हुए भी असली सत्ता नाना फड़नवीस के हाथ में है।

नाना व सवाई माधवराव के बीच अनबन होना विपक्ष के लिए लाभदायक तथा सुविधाजनक बात थी। आनंदीबाई तथा उनका पुत्र बाजीराव द्वितीय सदा छल-कपट में लगे रहे। सच्चे-झूठे सभी साधनों का प्रयोग कर उन्होंने अंत में इच्छित फल पा ही लिया। नाना फडनवीस के महत्त्व तथा प्रभाव; और माता एवं पत्नी के चरित्र के बारे में संशय ग्रस्त होकर, सवाई माधवराव ने शनिवार बाडा की तीसरी मंजिल से हजारी फव्वारे पर कूद कर आत्महत्या कर ली।

मनुष्य की हत्या किसी दूसरे के हाथों होती है। परन्तु आत्महत्या उसके अपने मनोविकारों के कारण घटित होती है। 'सवाई माधवराव यांचा मृत्यु' नाटक में इस आत्महत्या के लिए उत्तरदायी मूलभूत मनोविकारों के कलात्मक शोध का प्रयत्न किया गया है।

यह नाटक ऐतिहासिक होने के साथ-साथ ऐतिहासिक घटनाओं तथा पात्रों के आधार पर तैयार किया गया था। परन्तु इनको प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते समय नाटककार ने कुछ काल्पनिक पात्रों तथा काल्पनिक प्रसंगों का भी उपयोग किया। सबसे बड़ी बात यह थी कि सवाई माधवराव के हृदय में संशय का बीज बोने व उसके प्रस्फुटन के जिम्मेदार केशवशास्त्री जैसा पात्र काल्पनिक होता हुआ भी नायक सवाई माधवराव जितना ही महत्त्वपूर्ण भी था।

सवाई माधवराव 'हैमलेट' से मिलता-जुलता तथा केशवशास्त्री 'ईयागो' जैसा पात्र है।

काल्पनिक पात्रों व घटनाओं का निर्माण करते समय मूल इतिहास व ऐतिहासिक व्यक्तियों को उनके मूल रूप से अभिन्न रखने का प्रामाणिक प्रयत्न किया गया। राजा महाराजाओं के बुद्धिभ्रंश होने का एवं उनकी आत्महत्या का दोष इतिहासकार दुर्भाग्य के माथे मढ़ने का प्रयत्न करते हैं। बाजीराव ने कुछ मांत्रिकों को भेजकर जारणमारण मंत्र के प्रभाव से सवाई माधवराव की बुद्धि पर प्रभाव डाला, ऐसा उस समय के लोग समझते रहे। परन्तु, शत्रुओं ने मौका साधकर बड़ी चालाकी से मंत्र द्वारा जादू-टोना किया, ऐसा कहने की अपेक्षा उन्होंने नाना फड़नवीस के विषय में माधवराव पेशवा का हृदय कलुषित करने का प्रयत्न किया, ऐसा कहना खाडिलकर को अधिक युक्तिसंगत प्रतीत हुआ होगा।

नाना फड़नवीस को पेशवा दरबार में मिले बड़प्पन से अनेक छोटे-बड़े लोग उनसे ईर्ष्या करते थे। उनके विरुद्ध सच्ची झूठी अफ़वाहों का सिलसिला इन लोगों ने चला रखा था। नाना फडनवीस के बारे में जो लोग सवाई माधवराव के कानों में जहर घोल रहे थे उन सब को नाटक या रंगमंच पर लाना संभव न था, इसीलिए खाडिलकर ने केशवशास्त्री नाम के काल्पनिक चरित्र की योजना तैयार की।

नाटककार ने खलनायक केशवशास्त्री के पात्र का उपयोग कर गिने-चुने प्रसंगों के आधार पर ही सवाई माधवराव की मानसिक विकृति तथा अधोगति को बहुत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया।

राज्य चलाने के सारे सूत्र नाना फड़नवीस के हाथ में हैं और पेशवा केवल निर्माल्य (देवताओं पर से उतारे हुए सूखे फूल) बनकर रह गए हैं, यह कहकर केशवशास्त्री सर्वप्रथम माधवराव के स्वाभिमान पर चोट करते हैं। तत्पश्चात् नाना के बारे में आनंदीबाई ने जो झूठी अफ़वाहें फैलाई थीं, उनका तथा उनके लोकविश्रुत चरित्र का आधार लेकर नाना तथा यशोदाबाई की मौसी और नाना तथा माधवराव पेशवा की माता के अनुचित संबंध हैं—ऐसा बार-बार कहकर केशवशास्त्री सवाई माधवराव का मन कलुषित करते हैं। यदि सवाई माधवराव विचारवान पुरुष होता तो केशवशास्त्री का यह दाँव निष्फल होता। परन्तु उसकी विकारग्रस्त व चंचल मनोवृत्ति ने इस संशय को पनपने में मदद दी और इसी कारण किंकर्तव्यविमूढ़ हैमलेट के समान उसका करुण अंत हुआ।

नाना के बारे में सवाई माधवराव के कलुषित विचारों एवं विकारों को खाडिलकर ने बड़ी चतुरता से चित्रित किया।

इस नाटक में सवाई माधवराव के अनेक स्वगत संभाषण तथा अन्य वाक्य हैमलेट की याद दिलाते हैं। जिस प्रकार अपनी माता के व्यभिचार के कारण हैमलेट को सारे संसार से घृणा हो गई थी, उसी प्रकार अपनी माता एवं सास के नाना के साथ अनुचित संबंधों के संशय से परेशान माधवराव की स्थिति भी दयनीय हो गई थी। ऐसे ही एक स्वगत भाषण में वे कहते हैं :

> "····यह पापी शनिवार वाड़ा, और, इस गंदे पुणे शहर को छोड़कर मुझे कहीं दूर चला जाना चाहिए। यह पापी स्थान जलाकर राख कर दें तो ! छी, कैसे स्वच्छ होगा यह स्थान ? जलने के बाद बची हुई राख और कोयले ! इन लोगों के काले पाप की वह गंदगी किस प्रकार हटाई जायेगी, गंगा जैसी पवित्र महानदी भी इस राख से पापमय हो जाएगी। मिट्टी में यह राख गाड़ दी जाए तो वसुंधरा की कोख के सारे हीरे काले पड़ जायेंगे। आकाश में यह राख फूंक दी जाए तो समस्त तेजस्वी तारे कलुषित हो जायेंगे।"

समस्त स्त्री-जाति की पवित्रता के प्रति श्रद्धा का नष्ट होजाना सवाई माधवराव की शोकांतिका का सबसे भीषण स्वरूप है। सवाई माधवराव अंत में जिस अवस्था पर पहुँचता है, वहाँ से वापस लौटना असंभव था। ऐसी मनः स्थिति में आत्महत्या अपरिहार्य ही थी।

'सवाई माधवराव यांचा मृत्यु' नाटक में केवल छः प्रमुख पात्र हैं। इतने कम पात्रों की सहायता से खाडिलकर ने अपने प्रथम नाटक की रचना की थी। इस प्रकार के नाटक में क्लिष्ट कथानक की संभावना नहीं थी। सवाई माधवराव के हृदय में अगतिकता उत्पन्न करने के लिए केशवशास्त्री की इच्छा के अनुसार सब घटनाएँ सहज ही घटित होती जाती हैं। खाडिलकर ने कथानक की क्लिष्टता की अपेक्षा मानव स्वभाव के चित्रण पर अधिक जोर दिया है। सवाई माधवराव का मानसिक अधःपतन क्रमशः दिखाने में उनकी लेखनी का कौशल प्रकट हुआ है। इस कार्य के लिए उन्होंने शेक्सपीयर के तरीकों का उपयोग किया है।

खाडिलकर ने जब 'सवाई माधवराव यांचा मृत्यु' नाटक लिखा, उस समय संस्कृत नाटकों की परम्परा में पले किर्लोस्कर और देवल के संगीत नाटक अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में थे तथा अत्यंत लोकप्रिय थे। संस्कृत नाट्यशास्त्र का यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है कि नाटक सुखांत होने चाहिए। इसके विपरीत खाडिलकर का यह नाटक गद्य में लिखा होने पर भी एक भीषण शोकांतिका—त्रासदी है।

सन् 1896 में 'केसरी' कार्यालय में प्रवेश करने के तुरंत बाद खाडिलकर को अकालग्रस्त इलाकों की मदद के संदर्भ में शोलापुर, बीजापुर आदि जगहों पर दौरे के लिए जाना पड़ा। बीजापुर का उद्ध्वस्त क़िला देखकर उन्हें विजयनगर के वैभवशाली साम्राज्य की याद आयी। अंग्रेजों की दासता में आने से पूर्व ही (मुगलों के समय में) मराठों का झंडा अटक (अब पाकिस्तान में) शहर तक जा लहराया था। हाथों से छूटा हुआ वैभव और राज्य अब पुनः पाना असंभव नहीं था। देश में ऐसे प्रयत्न भी हो रहे थे।

'कांचनगडची मोहना' नाटक से खाडिलकर ने अपने ध्येयवादी नाट्य लेखन का आरंभ किया। यह एक ऐतिहासिक प्रतीत होने वाला, परन्तु काल्पनिक नाटक है। ऐतिहासिक पार्श्वभूमि यथार्थ पर आधारित है परन्तु पात्रों की योजना काल्पनिक है।

अपनी नाट्य सृष्टि को सँजोते हुए खाडिलकर ने उस समय के अनुरूप कर्त्तव्यनिष्ठ महत्त्वाकांक्षी चरित्र का निर्माण किया था। ऐसे पात्र, ऐसी भूमिकाएँ, जिनके लिए लोगों के मन में आदर की भावना पनप सके। इन भूमिकाओं का उद्देश्य भी फिर सहज ही लोगों को अनुकरणीय लगने लगा। **'कांचनगडची मोहना'** के मोहना तथा प्रतापराव ऐसे ही व्यक्तिचित्र हैं।

'कीचकवध' खाडिलकर का अत्यंत प्रसिद्ध नाटक है। यह उन्होंने 1907 में लिखा था।

सन् 1896 से 1906 के बीच का समय महाराष्ट्र राज्य के लिए राजनीतिक दृष्टि से काफ़ी हलचल से भरा रहा। खाडिलकर देश की राजनीति में पूर्णतः निमग्न हो गए। सभा, सम्मेलन व केसरी के लेख, इन सबके द्वारा वे स्वतंत्रता आंदोलन को आगे बढ़ाने का सतत प्रयत्न कर रहे थे।

इसी कालखंड में मराठी रंगमंच पर नये-नये उन्मेषों के फल-फूल लग रहे थे। रंगमंच जनजागृति का एक प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हो रहा था।

बंगाल-विभाजन के बाद देश की राजनीति ने उग्र रूप धारण कर लिया। बहुत बड़ी संख्या में सामान्य जनता राजनीति की ओर खिंचने लगी। सन् 1906 में कलकत्ता कांग्रेस ने प्रत्यक्ष तौर पर प्रतिकार किया। 'वंदे मातरम्' की घोषणा करते हुए संपूर्ण देश ने आंदोलन का साथ दिया। लेखों एवं भाषणों के साथ-साथ इस बार खाडिलकर ने अपने नाटक रूपी अस्त्र **'कीचकवध'** से सरकार पर हमला किया।

'कीचकवध' एक उत्कृष्ट नाट्य रूपक है। **'सवाई माधवराव यांचा मृत्यु'** और **'प्रेमध्वज'** को छोड़कर खाडिलकर के अन्य सभी नाटक रूपकात्मक ही हैं। इन नाटकों में 'कीचकवध' का रूपक अत्यंत उत्कृष्ट बन पड़ा है। उपमा को पूर्णोपमा बना देने जैसी कवि की करामात खाडिलकर ने इस नाटक में कर दिखाई है। इस नाटक के प्रत्येक प्रवेश के प्रत्येक पात्र के प्रत्येक संभाषण में प्रेक्षकों को रूपकात्मक ध्वन्यर्थ सुन पड़ा।

उस समय की राजनीति का हू-ब-हू चित्र अंकित करने के लिए खाडिलकर ने महाभारत के कीचकवध का कथानक चुना। कथानक के चुनाव में उनकी नाट्य प्रतिभा तथा उसे योग्य तरीके से प्रस्तुत करने में उनके नाट्य-कौशल की प्रामाणिकता दिखाई देती है।

खाडिलकर ने नाटक की प्रस्तावना में लिखा है कि सैरंध्री जैसी शीलवान

स्त्री के शीलभंग की इच्छा रखनेवाले नराधम का वध—मात्र इतना ही समूचे नाटक का कथानक है । परन्तु उस समय दर्शकों को यह नाटक देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो वे रंगमंच पर महाभारत की कथा नहीं अपितु समकालीन राजनीति की कथा देख रहे हैं ।

बंगाल का विभाजन करनेवाले, दिल्ली में दरबार लगाकर भारत के सारे राजा-महाराजों से झुक-झुककर सलाम करवानेवाले, स्वयं को भारत का बादशाह समझनेवाले, उस समय के उन्मत्त वाइसरॉय लार्ड कर्जन को ही लोगों ने कीचक के रूप में देखा । प्रेक्षकों ने राजा विराट तथा रानी सुदेष्णा के रूप में इंगलैंड के उदार मतवादी राजनीतिज्ञ देखे । धर्मराज के रूप में गैर जिम्मेदार, नौकरशाही के साथ विनती, अर्ज जैसे क़ानूनी परन्तु प्रभावहीन मार्गों से लड़नेवाला नरम दल भी उन्हें दिखाई देता था। भीम उनकी दृष्टि में सशस्त्र आंदोलन द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करनेवाला क्रांतिकारी पक्ष था और सैरंध्री (द्रौपदी) थी असहाय, संकट ग्रस्त भारतीय जनता !

प्रभावशील प्रचार व कलात्मकता का अपूर्व संगम प्रस्तुत करनेवाली खाडिलकार की यह एक अमर नाट्यकृति है ।

धीमी लय से शुरू होनेवाला यह नाटक क्रमशः गतिशील होता जाता है। कीचक का वध नाटक का भयंकर अंत है। परन्तु ऐसा अंत भी दर्शक को प्रसन्न करता है, यह इसकी विशेषता है ! विलक्षण आनंद देनेवाली त्रासदी को इस नाटक का वैशिष्ट्य मानना होगा ।

नाट्य वस्तु की रचना खाडिलकर ने बहुत सुंदर ढंग से की है। विस्मय और उत्कंठा के उपयोग से आशा-निराशा का खेल उन्होंने बहुत सुंदरता से चित्रित किया। प्रत्येक प्रसंग रोमांचकारी है और संरचना में कहीं भी ढीलापन नहीं आ पाया है। एक से दूसरा प्रसंग जिस स्वाभाविकता से उत्पन्न होता जाता है, उससे संपूर्ण कथानक में एकात्मता उत्पन्न हुई है।

त्रासदी या शोकान्तिका का तनाव कम करने के लिए कुछ विनोदी पात्र और कुछ विनोदी घटनाएँ संयोजित करने की खाडिलकर की आदत थी। इन पात्रों एवं प्रसंगों से मुख्य कथानक को जोड़े रखने का कौशल उनके सभी नाटकों में सहज साध्य नहीं हो सका है। परन्तु 'कीचक वध' में निश्चय ही उन्होंने यह कार्य बखूबी कर दिखाया है । इस नाटक का विनोद भाव आह्लाददायक होकर नाटक के प्रमुख विषय को परिपुष्ट करनेवाला ही है ।

खाडिलकर का यह नाटक उनके नाट्यलेखन के पराक्रम का एक जगमगाता हुआ शिखर है तथा मराठी नाट्यसृष्टि के मुकुट का तो यह देदीप्यमान कोहिनूर ही है।

महाराष्ट्र के नासिक शहर में 21 दिसंबर, 1909 को एक भरे हुए नाट्यगृह में कलेक्टर जैक्सन की हत्या हो गयी। इस पार्श्वभूमि के कारण 'कीचकवध' नाटक में प्रेक्षकों को एक प्रच्छन्न अर्थ दिखने लगा। सरकारी दरबार में इसके आशय को लेकर चर्चा की गई तथा अधिकारियों की हत्या के प्रोत्साहन देने वाले इस नाटक को जब्त करके इसके मंच प्रदर्शन पर रोक लगा दी गयी।

'कीचकवध' पर पाबंदी लगने से पहले ही खाडिलकर ने **'भाऊबंदकी'** नामक नया नाटक लिखा था। इस नाटक को लिखने की प्रेरणा उन्हें 1907 की सूरत की कांग्रेस घटना से मिली। सूरत की कांग्रेस सभा हिंसावादी लोगों के झगड़े में छिन्न-भिन्न हो गई थी, यह इतिहास की जानी-मानी घटना है।

वैसे 'भाऊबंदकी' भी ऐतिहासिक नाटक है। नाटक में पेशवाओं के अंतिम दिनों के समय होनेवाले भाइयों के आपसी झगड़ों को दर्शाया गया है। गरम-नरम पक्षों के आपसी झगड़ों को देखकर खाडिलकर को महाराष्ट्र के पेशवा इतिहास का स्मरण होता था। रूपकात्मक शैली में प्रसंग और व्यक्ति का चित्रण करके नाट्यकथा को बाँधना खाडिलकर का निजी वैशिष्ट्य था।

'भाऊबंदकी' नाटक 'कीचकवध' जैसा एक संपूर्ण रूपक नहीं, परन्तु लोकमान्य तिलक पर रामशास्त्री का रूपक स्पष्ट है।

खाडिलकर की नाट्य-निर्मिति में शेक्सपीयर का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। लेखन शैली के साथ-साथ शेक्सपीयर द्वारा निर्मित कुछ अमर व्यक्तिचित्रों का प्रभाव भी दिखाई देता है। 'भाऊबंदकी' नाटक पढ़ते समय राघोबा व आनंदीबाई की समानता 'मैकबेथ' नाटक के मैकबेथ एवं लेडी मैकबेथ से स्पष्ट नजर आती है।

'भाऊबंदकी' के मुख्य कथानक के साथ खाडिलकर ने एक उपकथानक भी जोड़ा है। इस उपकथानक में घरेलू व सामाजिक जीवन में होनेवाले आपसी झगड़े सामने आते हैं। रसवैचित्र्य के सहारे मूल विषय को और भी उभारने का उनका प्रयत्न पूर्णतया सफल रहा है।

'कीचकवध' की तरह 'भाऊबंदकी' पर भी सरकार रोक लगायेगी, ऐसी अफ़वाह भी फैली। इसी समय 'केसरी' का घोषणा-पत्र खाडिलकर से पूछे बिना ही केलकर ने अपने नाम से करा लिया था। इस अपमान के कारण खाडिलकर ने 'केसरी' से त्यागपत्र दे दिया। 'केसरी' की नौकरी थी, नहीं 'कीचकवध' पर सरकारी रोक थी, और 'भाऊबंदकी' पर सरकार की कोप-दृष्टि थी ! खाडिलकर के समक्ष समस्या थी—अब क्या करें ?

इसी समय 'संगीत किर्लोस्कर नाटक मंडली' महाराष्ट्र में सर्वश्रेष्ठ नाटक मंडली के नाम प्रसिद्धि पा रही थी। नारायणराव राजहंस उर्फ़ बालगंधर्व के गायन व अभिनय के कारण इस मंडली के नाटक अत्यंत लोकप्रिय हो गये थे। जब खाडिलकर का परिचय और संबंध इस नाटक मंडली

से हुआ, तब उसके मृदु, मधुर तथा नशीले संगीत के प्रभाव से गद्य-नाटक में व्यस्त उनकी प्रतिभा और मनोवृत्ति संगीत नाटकों की ओर झुकने लगी।

खाडिलकर ने जिस समय '**संगीत मानापमान**' नाटक लिखा, तब इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि यह नाटक भी कहीं सरकार के रोष का कारण न बन जाये। यह नाटक किर्लोस्कर मंडली के लिए लिखा गया था। अतः संगीतानुकूल अनेक पदों की रचना इसमें की गयी।

खाडिलकर का 'मानापमान' नाटक एक स्वतंत्र संगीत आमोदिका के रूप में अत्यंत प्रसिद्ध हुआ। अपने पांच गद्य-नाटक लिखने के पश्चात् बड़े आत्मविश्वास के साथ कवि कृष्ण ने संगीत नाट्य सृष्टि में प्रवेश किया।

'संगीत मानापमान' एक हल्का-फुल्का सुखांत नाटक है। इसका स्वरूप किसी परीकथा जैसा है। इस नाटक की घटनाओं तथा कार्यकारणभावों का विश्लेषण एक सीमा से परे जाकर करना अरसिकता होगी।

मराठी रंगमंच पर जिन गिने-चुने दो-चार पुराने नाटकों के प्रयोग आज भी होते रहते हैं, उनमें यह नाटक भी है। इस नाटक के कथानक का रूप कदाचित् बेडौल होने पर भी उसके सुस्पष्ट स्वभाव चित्रण, विरोधी भावों के कारण पात्रों के स्वभाव में उत्पन्न होनेवाले मधुर संघर्ष, इसी विरोध से निर्मित उलझन तथा भावनाओं की सम्मोहक उथल-पुथल के कारण यह एक उच्च कोटि की कलाकृति बन गई है।

'**संगीत विद्याहरण**' नाटक में खाडिलकर ने मद्यपान निषेध का विषय लिया है। सन् 1907 में पूना में लो० तिलक के प्रोत्साहन से इस आन्दोलन का शुभारंभ हुआ था। एक ओर खाडिलकर ने इस नाटक द्वारा शुक्राचार्य की शोकांतिका की रमणीय प्रस्तुति की तो दूसरी ओर कच देवयानी के प्रणय को भी उतना ही महत्त्व दिया।

मद्यपान विरोधी विषय पर नाटक लिखने के उद्देश्य से खाडिलकर ने शुक्राचार्य के संप्रदाय को शराबियों के एक संप्रदाय के रूप में प्रस्तुत किया है। संभवतः इसी कारणवश शुक्राचार्य की इस शोकांतिका को उचित महत्व नहीं मिल पाया।

कच देवयानी की प्रणय-कथा इस नाटक में काफ़ी सफलता से प्रस्तुत हुई है। परन्तु मद्यपान विरोधी विचारों को अत्यधिक प्रधानता देकर नाटककार ने सुंदर कथावस्तु निर्मिति की अंत में दुर्दशा कर डाली। 'विद्याहरण' नाटक में शुक्राचार्य के पेट से बाहर आकर कच देवयानी को 'दीदी' कहकर पुकारता है एवं देवयानी भी उसे 'मेरा छोटा भाई कच' कह कर संबोधित करती है। इससे आभास यह होता है कि कच-देवयानी के प्रेम एवं भावनात्मक सम्बन्धों का ही का उपहास किया गया है।

किसी महान् विचार अथवा तत्त्व को इसी प्रकार अतिरिक्त प्राधान्य देकर नाट्यवस्तु के सहज व कलात्मक विकास की उपेक्षा करने की खाडिलकर की प्रवृत्ति धीरे-धीरे बढ़ती ही गयी। विशेषतः सन् 1920 के बाद, उनके सभी नाटकों में कला का स्तर गिरता ही चला गया।

सन् 1914 में '**सत्त्वपरीक्षा**' नाटक लिखकर खाडिलकर ने 'महाराष्ट्र नाटक मंडली' को दिया। यह एक पौराणिक नाटक है।

सन् 1908 से 1914 के बीच की लो० तिलक की जेल-यात्रा खाडिलकर की दृष्टि में आत्मबल व आत्मक्लेश के मार्गों की शुरुआत थी। 'सत्त्वपरीक्षा' नाटक के विषय में खाडिलकर के भतीजे श्री का. ह. खाडिलकार लिखते हैं :

> "राजा हरिश्चन्द्र जैसे लोकनेता कहलानेवाले लोकमान्य तिलक ने उस समय अपने छः वर्ष का कठोर कारावास धैर्य तथा तत्त्वनिष्ठा से भोगा था। इसीलिए '**सत्त्वपरीक्षा**' देखते समय लोगों के दिमाग़ में तिलक चरित्र ही उभर आता था।"

लोगों के समक्ष उच्च सात्त्विक आदर्श रखने का खाडिलकर का प्रयत्न प्रशंसनीय न था, ऐसा कौन कह सकता है ? परन्तु ऐसा आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनकी कला का स्वरूप पहले की अपेक्षा निम्न कोटि का होता गया, यह सत्य है।

'**संगीत स्वयंवर**' खाडिलकर का दसवां तथा उनके संगीत नाटकों में तीसरा नाटक था। 'संगीत गंधर्व नाटक मंडली' के लिए लिखा गया यह पहला नाटक था। किर्लोस्कर नाटक मंडली से अलग होने पर बालगंधर्व ने अपनी अलग संगीत नाटक कंपनी स्थापित की थी। गंधर्व नाटक मंडली ने यह नाटक 10 दिसंबर 1916 को रंगमंच पर खेला।

इसमें रुक्मिणी स्वयंवर जैसे लोकप्रिय, पौराणिक कथानक को खाडिलकर ने अत्यंत प्रेक्षणीय व रसपूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया। रुक्मी का कृष्ण-रुक्मिणी के विवाह के लिए विरोध—यही संपूर्ण कथानक का छोटा-सा नाट्यबीज है। इस नाट्यबीज का नाटककार ने बड़े कौशल से विकास किया है। 'विवाह के लिए रुक्मी का विरोध' इस पार्श्वभूमि पर कृष्ण-रुक्मिणी की प्रेमकथा अत्यंत रमणीय स्वरूप में प्रस्तुत की गई है।

श्रीकृष्ण की प्रेयसी के रूप में खाडिलकर ने रुक्मिणी को बड़े ही आकर्षक ढंग से चित्रित किया है। इस मुख्य भूमिका के आसपास उसकी अन्य भूमिकाएँ विचरण करती हैं। श्रीकृष्ण के प्रेम में उन्मत विहार करती हुई, प्रेम के उदात्त स्वरूप तथा सफलता के प्रति आत्मविश्वास रखनेवाली रुक्मिणी प्रेक्षकों का मन बरबस आकर्षित कर लेती है।

कृष्ण और रुक्मिणी के एकांत के प्रसंग इस नाटक में नहीं के बराबर हैं। परन्तु इसके बावजूद कृष्ण-रुक्मिणी के शृंगार व प्रेमनाट्य को अत्यधिक मर्यादा मिली है। खाडिलकर की लेखनी की इस सामर्थ्य को सभी स्वीकार करेंगे।

इस नाट्यकथा में लोकमान्य तिलक और कृष्ण का रूपक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। छः वर्ष का कारावास तथा उस बीच 'श्रीमद् भगवद्गीता-रहस्य' जैसी महान कृति को लिखने के कारण जनता का उनके प्रति आदर भाव और भी बढ़ गया था। लोग उन्हें ईश्वर का अवतार मानने लगे थे। खाडिलकर भी यही मानते थे। इसीलिए उन्हें कृष्णलीला में तिलकचरित्र तथा तिलकचरित्र में कृष्णलीला दिखाई देती थी।

'संगीत स्वयंवर' नाटक में संगीत व गद्य दोनों का समान महत्त्व है। आरंभिक प्रयोगों में नाटक के इन दोनों अंगों को समान महत्त्व मिलता रहा। परन्तु बाद में उसके संगीत का महत्त्व क्रमशः बढ़ता गया। धीरे-धीरे 'स्वयंवर' नाटक में गद्य का प्रभाव बिल्कुल ही समाप्त होने लगा।

यह संगीत का मराठी रंगभूमि पर आक्रमण था!

'स्वयंवर' की सफलता से खाडिलकर नाट्याचार्य सिद्ध हो गए। 4 जून, 1917 के दिन पुणे में सम्पन्न होने वाले 'भारत नाट्य समाज' के नाट्य सम्मेलन में खाडिलकर को अध्यक्ष बनाया गया। इससे पहले भी 1907 में हुए नाट्य सम्मेलन (तीसरे अधिवेशन) का अध्यक्ष पद उन्होंने सुशोभित किया था। अपने अध्यक्षीय भाषण में खाडिलकर ने अपने नाट्यलेखन का विवरण रसिक दर्शकों के समक्ष रखा। यह भाषण उनके जीवन का मर्म प्रस्तुत करनेवाले ताम्रपट जैसा है। वे कहते हैं :

> "रणभूमि से जैसे वीरवृत्ति का उद्गम होता है वैसे पुरुषार्थ से, वीरवृत्ति से, राजवैभव से रस की, काव्य की भी उत्पत्ति होती है। कवियों के पीछे-पीछे वीर पुरुष अथवा वीर पुरुषों के पीछे-पीछे कवि, ऐसा यह वीर्य व रस के बीच का अन्योन्य संबंध है···"

'स्वयंवर' नाटक से गंधर्व मंडली को बहुत पैसा मिला। खाडिलकर को नाट्याचार्य की पदवी मिली। दोनों के लिए यह नाटक यश की परिसीमा बना!

'स्वयंवर' लिखने के बाद, चार वर्षों का काल अत्यंत व्यस्त रहा। सन् 1920 में पुनः नयी जिम्मेदारियाँ आ पड़ी थीं। 'द्रौपदी' नाटक पूरा करने के लिए उन्होंने चार महीने की छुट्टी ली और इस अवधि में **'संगीत द्रौपदी'** लिखकर पूरा करने का उन्होंने निश्चय किया।

परन्तु इसी समय उनके बड़े भाई हरिपंत तात्या की मृत्यु हो गयी। इसके बाद ही लोकमान्य तिलक का भी स्वर्गवास हो गया। खाडिलकर को 'केसरी' का काम भी छोड़ना पड़ा।

'संगीत द्रौपदी' नाटक के प्रयोग द्वारा गंधर्व नाटक मंडली का ऐश्वर्य लोगों के सामने रखकर उन्हें प्रभावित करने की बाल गंधर्व की मनोकामना थी। अतः इस नाटक के लिए पानी की तरह पैसा बहाया गया।

'संगीत स्वयंवर' नाटक से मिले यश और धन का यह नशा था!

परन्तु 'द्रौपदी' नाटक का रसायन सिद्ध न हो पाया। इसकी शानदार प्रस्तुति देखकर भी प्रेक्षक संतुष्ट नहीं हुए। खाडिलकर के पहले तीन संगीत नाटकों को देखने के बाद, जिस प्रभाव एवं आनंदानुभूति की वे अपेक्षा कर रहे थे, उसकी पूर्ति इस नाटक द्वारा नहीं हो सकी।

खाडिलकर की प्रतिभा अब क्षीण होने लगी थी। वैचारिक नाट्यनिर्मिति खाडिलकर का स्वाभाविक गुण था। परन्तु 'कीचकवध', 'भाऊबंदकी' तथा 'स्वयंवर' नाटकों में उन्होंने अपनी वैचारिक भावनाओं को कला पर हावी न होने दिया। 'द्रौपदी' में यह उन्हें साध्य न हो सका। उनकी कलाकृतियाँ क्रमशः कलाविहीन होती गईं।

'संगीत मेनका' नाटक सन् 1926 में रंगमंच पर आया। खाडिलकर के विचारों में दर्शन का प्रकर्ष अब और भी अधिक दिखाई देने लगा। अपने गांधीवादी तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए उन्होंने मेनका के सीधे-सादे, रमणीय, नाट्य-प्रसंगों से परिपूर्ण कथानक को सम्पूर्णतः बदल डाला। इस तरह 'मेनका' नाटक उनकी कल्पना का खेल बनकर रह गया।

उस समय महाराष्ट्र में बहुचर्चित 'फेर-नाफेर' वाद-विवाद के ज्वलंत राजनीतिक झगड़े को 'संगीत मेनका' में खाडिलकर ने संयोजित किया। पहले का-सा कलात्मक तारतम्य इसमें न रहा। इसके अलावा वाग्युद्ध की सुंदर सुरुचिपूर्ण अपनी मर्यादा भी उन्होंने यहाँ छोड़ दी।

खाडिलकर के नाटक अब नाटक न रहे। वे गाँधीजी के दार्शनिक विचारों के प्रवचन मात्र बन कर रह गये!

सन् 1927 में, खाडिलकर ने महाराष्ट्र नाटक मंडली के लिए गद्य नाटक **'सवती-मत्सर'** (सौतिया डाह) लिखा। 'सविनय आंदोलन' के समय साबरमती जेल में उन्होंने **'संगीत सावित्री'** नाटक भी लिखा। अंत में, 1936 में **'संगीत त्रिदंडी संन्यास'** लिखकर उन्होंने नाटक लेखन से भी संन्यास ले लिया।

अब हम कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर की नाट्य सृष्टि पर एक सरसरी दृष्टि डालने का प्रयत्न करेंगे—

बयालीस—तियालीस वर्षों के दीर्घ कालखंड में खाडिलकर ने कुल पंद्रह नाटक लिखे—

(1) सवाई माधवराव यांचा मृत्यु (1893)
(2) कांचनगडची मोहना (1898)
(3) कीचकवध (1907)
(4) बायकांचे बंड (1907)
(5) भाऊबंदकी (1909)
(6) प्रेमशोधन (1910)
(7) संगीत मानापमान (1911)
(8) संगीत विद्याहरण (1913)
(9) सत्वपरीक्षा (1914)
(10) संगीत स्वयंवर (1916)
(11) संगीत द्रौपदी (1920)
(12) संगीत मेनका (1926)
(13) सवती मत्सर (1927)
(14) संगीत सावित्री (1933)
(15) संगीत त्रिदंडी सन्यास (1936)

—इन पन्द्रह नाटकों में से नौ नाटक पौराणिक हैं। 'सवाई माधवराव यांचा मृत्यु' एवं 'भाऊबंदकी' ऐतिहासिक नाटक हैं। 'कांचनगडची मोहना' का स्वरूप काल्पनिक एवं ऐतिहासिक है। 'प्रेमध्वज' सर वॉल्टर स्कॉट के 'टॅलिस्मैन' उपन्यास के ध्वजनाश कथानक पर आधारित है। 'प्रमिला स्वयंवर' नामक पौराणिक कथा को स्त्रीराज्य विषयक कल्पना एवं विचारों का आधार देकर, 'बायकांचे बंड' (महिलाओं का आंदोलन) नाटक रूप में साकार किया गया है। संपूर्णत: स्वतंत्र व कल्पनारम्य उनका एक ही नाटक है : 'संगीत मानापमान'।

नाटक के क्षेत्र में, खाडिलकर के सृजन-कर्म का स्वर और स्वरुप विविधतापूर्ण है—

'कीचकवध' व 'भाऊबंदकी' ने खाडिलकर को गद्य नाटककार के रूप में सम्मान दिलाया। बाद में, 'संगीत मानापमान' नाटक लिखकर वे संगीत नाटककार के रूप में भी प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हुए। संगीत की दृष्टि से 'मानापमान' को प्रेक्षकों ने सर्वश्रेष्ठ सम्मान दिया। 'संगीत विद्याहरण' व 'संगीत स्वयंवर' नाटकों ने संगीत नाटककार के रूप में उनकी प्रसिद्धि तथा यश पर कलश चढ़ाया।

संगीत नाटकों के मूल्यांकन के लिए यहाँ उनके पदों का मूल्यांकन एवं गुणांकन आवश्यक है।

खाडिलकर के नाट्यपदों के बारे में आलोचना के स्वर में जो बात कही जाती है, उसमें इन पदों को क्लिष्ट, अर्थहीन, दुरान्वयी, दुर्बोध, नीरस व व्याकरण-दूषित कहा जाता है। लेकिन ऐसे आरोप निस्संदेह अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। खाडिलकर के सभी संगीत नाटक सफल न हो सके। यह सत्य है कि उनके नाटकों का प्रत्येक पद उच्चस्तरीय नहीं है और कुछ तो बिल्कुल साधारण भी है। किन्तु इसपर भी संगीत नाटककार के रूप में उनका स्थान सुनिश्चित है। 'संगीत मानापमान', 'संगीत विद्याहरण', तथा 'संगीत स्वयंवर' उनके अत्यंत सफल नाटक हैं। इन नाटकों के अधिकांश पद उच्चस्तरीय एवं मधुर बन पड़े हैं।

जब खाडिलकर का 'मानापमान' नाटक किर्लोस्कर मंडली ने खेलने का निश्चय किया, तब नाटक के पदों की रचना कौन करे, यह प्रश्न उपस्थित हुआ। खाडिलकर बोले, "अपने नाटक के पद भी मैं स्वयं लिखूंगा।" अनेक लोगों ने इसपर आश्चर्य व्यक्त किया। खाडिलकर ने इससे पहले कभी पद लिखे ही नहीं थे। काव्य के क्षेत्र में वे बिल्कुल ही अनभिज्ञ थे। परन्तु विचारपूर्वक निर्णय लेना तथा बाद में संपूर्ण शक्ति लगाकर स्वीकार किये गये काम को सिद्ध करना खाडिलकर का स्वभाव था। अत: लिए हुए निर्णय के अनुसार, 'मानापमान' के गीत उन्होंने स्वयं लिखे। ये पद मराठी रंगमंच पर अत्यधिक लोकप्रिय हुए। इस लोकप्रियता का मुख्य कारण केवल बाल गंधर्व की गायन कला है, यह कहना गलत होगा। खाडिलकर की लेखनी के प्रसाद एवं काव्यगुण भी अत्यंत ऊँचे मान के थे।

'मानापमान' नाटक के आरंभ में धनवान पिता की पुत्री भामिनी को धैर्यधर के गुण दिखाई नहीं देते। उसे केवल उसकी गरीबी दिखाई देती है! एक निर्धन आदमी से विवाह करने के लिए वह तैयार नहीं। दो दृष्टांतों का आधार लेते हुए खाडिलकर ने भामिनी के भाव अत्यंत मार्मिक किन्तु सरल तरीके से शब्दबद्ध किए हैं :

वरि गरिबा वीरा जी अबला
सुख संसारी ते केवि तिला
राघव तोडित धनु ऋषिवेशे
मग जाई वना सीताबाला
अधन धनंजय मीनवधा करी
वनीं वास मग पांचालिला।

इस प्रकार के सुरीले पदों की एक माला ही खाडिलकर ने 'मानापमान' नाटक में गूँथी है। धैर्यधर के मुख से 'भाली चंद्र असे धरिला', 'युवती मना दारुण रण', 'चंद्रिका ही जणू', तथा भामिनी के लिए रचित 'पाही सदा मी' 'खरा तो प्रेमा', 'नयने लाजवित', 'विनयहीन वदता नाथा', ये सभी पद अत्यंत रम्य व प्रसादपूर्ण हैं।

'विद्याहरण' नाटक के पद भी इन्हीं की तरह सुंदर तथा कल्पनाविलास से सजे हुए हैं।

स्वयंवर नाटक में कृष्ण की मृत्यु के समाचार को झुठलाकर कि वह द्वारका में सुरक्षित हैं, जब रुक्मिणी को मालूम होता है तो यह आनंदायक समाचार लानेवाले चंद्रेश्वरसे यह कहती है, "तुम्हें मैं सोने का घर इनाम में दूंगी।" तब पास खड़ी सखी स्नेहलता पूछती है "और मुझे क्या दोगी रुक्मिणी ?" रुक्मिणी उत्तर देती है, "तुझे हीरे-मोतियों का घर पुरस्कार में दूंगी।" स्नेहलता कहती है, "चंद्रेश्वर को सोने का, मुझे हीरे-मोतियों का, फिर तुम कहाँ रहोगी?" रुक्मिणी गाकर कहती है :

करिन यदुमनी सदना
रुचिर सघन पतिमन सतीना
अशुभ मणीमय भुवन अबलांना
जरी नाथ रमैना

ऐसे अनेक भावपूर्ण, अर्थगर्भित पदों से 'संगीत स्वयंवर' सुशोभित हुआ है। गायन कला की दृष्टि से भी अपने पदों की रचना करने में खाडिलकर को पूर्ण सफलता मिली है। वैसे देखा जाये तो संगीत के क्षेत्र में उनका प्रभुत्व कम ही था। परन्तु "जशी मूळ चाल तसे हुबेहुब पद"—अर्थात् स्वर के हिसाब से पद रचने की करामात—उन्होंने कर दिखायी। प्रत्येक पद का मुखड़ा वे विशेष रूप से अत्यंत सुंदर बनाते थे।

खाडिलकर के इन तीन संगीत नाटकों में आसानी से पच्चीसेक ऐसे उच्च कोटि के सुंदर पद ढूंढे जा सकते हैं, जो काव्य तथा गायन दोनों ही की दृष्टि से समान रूप से सुंदर बन पड़े हैं। अनेक वर्षों से इन पदों को गाते हुए गायक व सुनते हुए श्रोतागण उनके अर्थपूर्ण एवं भावपूर्ण नादमाधुर्य में तल्लीन हो जाते हैं।

खाडिलकर के नाटकों के पदों के बारे में विचार करने के पश्चात् उनके नाटकों में हास्य रस के विषय पर चर्चा करना भी आवश्यक हो जाता है। पदों की आलोचना में जिस प्रकार अतिशयोक्ति की गयी है, वैसी ही आलोचना उनकी विनोद प्रियता पर भी की गई। परन्तु मराठी नाट्य सृष्टि की अपनी यात्रा में खाडिलकर ने हास्य रस की प्रस्तुति का जो प्रयत्न किया है, वह निश्चय ही उल्लेखनीय है।

नाटक के विषय का चित्रण उच्च तथा साधारण दोनों धरातलों पर करते हुए, गौण पात्रों का उपयोग हास्य रस के लिए करना खाडिलकर की विशेषता थी। विनोद प्रस्तुति की यह पद्धति उन्होंने 'भाऊबंदकी' नाटक में बड़ी सफलता से प्रयोग में लायी। 'विद्याहरण' नाटक में इसके साथ-साथ उन्होंने इन दोनों धरातलों को उदात्त व क्षुद्र भावों का विरोध दिखाने के लिए भी उपयोग में लाया। उदात्त तथा अनुदात्त, गंभीर तथा उथले विषयों व भावों को साथ-साथ रखकर, मूल विषय को ऊपर उठा देने का वे प्रयत्न करते थे। इसके लिए वे छोटे-छोटे उपकथानक तैयार करते थे तथा बड़े कौशल के साथ उन्हें मुख्य कथानक से जोड़ देते थे।

खाडिलकर ने 'मानापमान' नाटक में लक्ष्मीधर की भूमिका का निर्माण करके एक ही बार में हास्य रस के उच्चतम शिखर पर आरोहण कर दिखाया। इस नाटक में उनका विनोद हमेशा वाले फ़ॉर्मूलों की मर्यादा तोड़कर आगे निकल गया है। दो-चार गौण पात्रों के बदले यहाँ एक ही पात्र आता है। और यह पात्र इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसे गौण नहीं कहा जा सकता है। उदात्त व संकीर्ण का विरोध यहाँ भी है। परन्तु यह संकीर्णता पुरानी घिसी-पिटी परंपरा की क्षुद्र पात्रता नहीं है। इसकी अपनी मर्यादा और प्रतिष्ठा है। इसी कारण वह अत्यंत विनोदपूर्ण तथा आह्लाददायक है। 'मानापमान' नाटक में उपकथानक नहीं है। धैर्यधर व भामिनी के साथ-साथ लक्ष्मीधर भी उतना ही महत्त्वपूर्ण पात्र है।

'मानापमान' नाटक देखने के पश्चात् नायक-नायिका धैर्यधर व भामिनी की स्मृतियां देर तक मानस पटल पर छायी रहती हैं। उतनी ही, या शायद कुछ अधिक ही स्मृति लक्ष्मीधर की भी साथ रह जाती है। यह इस पात्र के निर्माण की विशेषता है।

'लक्ष्मीधर' स्वाभाविक विनोद का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। खाडिलकर को इस कृति में विनोद प्रस्तुति का सही मार्ग मिलने के कारण व्यंग्य-विनोद निर्माण के क्षेत्र में जो गुण उनमें न होने की आशंका की जाने लगी थी, वे इस रचना में सहज ही प्रगट हो सके।

विविध भावनाओं एवं रसों के मिलन से सुंदर नाट्य निर्मित होता है, यह खाडिलकर जानते थे। इसी कारण अपने नाटक लिखते समय उन्होंने भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले पात्र निर्मित किये व उनके द्वारा संघर्ष खड़े करने में वे अत्यंत सफल हुए। रसों के संदर्भ में भी, उन्होंने बहुत सतर्क होकर प्रेक्षकों को विविधरसों का आस्वाद देने का प्रयत्न किया।

श्रृंगार रस रससम्राट है, ऐसा खाडिलकर मानते थे। 'मानापमान' नाटक में धैर्यधर के मुख से आए एक पद में वे कहते हैं :

"नसती भिन्न रस हे, श्रृंगारराजा नवदल त्याला"

'कीचकवध' नाटक शोकरसात्मक है। परन्तु उसमें खाडिलकर ने कीचक व उसकी पत्नी रत्नप्रभा के शयन मंदिर में मुक्त श्रृंगार प्रस्तुत किया है।

'विद्याहरण' व 'स्वयंवर' में उन्होंने देवयानी और रुक्मिणी द्वारा स्वप्न शृंगार के पाठ कहलवाये हैं। नाटक की सौंदर्य वृद्धि में इन शृंगार पाठों से बहुत मदद मिली है। 'संगीत मानापमान' एक ऐसी आमोदिका या सुखान्तिका है, जिसमें शृंगार रस व प्रेमवर्णन भरे पड़े हैं।

नाट्यकला के क्षेत्र में एक कुशल निर्देशक के रूप में भी खाडिलकर का उल्लेख करना आवश्यक है। 'मानापमान' नाटक की सफलता का श्रेय नाटककार, गीतकार तथा कुशल निर्देशक, इन तीनों रूपों में खाडिलकर को जाता है। 'मानापमान' को मंच पर लाने के समय भी उन्होंने बहुत मेहनत की।

खाडिलकर के निर्देशन में पात्रों को अपनी-अपनी भूमिका समझा देना हमेशा विशेष महत्त्व रखता था। कलाकार को उसकी भूमिका का मर्म समझ लेने पर अभिनय करना आसान हो जाता है। श्रेष्ठ साहित्य में व्यक्तिचित्र किसी खिलते हुए फूल की पंखुरियों के समान सहज स्वाभाविक आकार लेते जाते हैं। नाटककार खाडिलकर द्वारा निर्मित व्यक्तिचित्र इसी प्रकार सहज, स्वाभाविक एवं खिले हुए हमें दिखाई देते हैं। नाटक के पात्रों का यह स्वाभाविक मर्म खाडिलकर अपने कलाकारों को समझाकर सिखाते थे और इसी कारण उनके कलाकारों का अभिनय नाटक के नियमों के अंतर्गत होते हुए भी एक ही साँचे में बंद न होता था।

नाटक की तैयारी के पश्चात् पात्रों की वेशभूषा व रंगमंच की पृष्ठभूमि की ओर भी वे बारीकी से ध्यान देते थे। अच्छे अभिनय के लिए पात्रों को शाबाशी देते थे तो गलत अभिनय के लिए डांट भी सुनाते थे। उनका यह निरीक्षण छोटी-बड़ी सभी भूमिकाओं के लिए एक-सा होता था। इतनी कड़ी देख-माल की वजह से सभी पात्र अपनी-अपनी भूमिकाएँ सतर्कता से करते थे। खाडिलकर के निर्देशन में तैयार नाटक इसी कारण हमेशा सफल होते रहे।

नाटक के लेखक की हैसियत से मिलने वाले मानधन की राशि उन्हें नाटक मंडलियाँ देती थीं, परन्तु नाटक की रिहर्सलों के लिए उठाये गये कष्टों के लिए उन्हें कभी कुछ नहीं मिला। नाटक तैयार करते समय खाडिलकर जितनी जी तोड़ मेहनत करते थे वह केवल अपने आनंद के लिए और इसलिए भी कि नाटक का मंच पर अभिनय अच्छा हो सके।

खाडिलकर स्वभावत: श्रेष्ठ कोटि के नाटककार थे। कलाकार को 'मूडी' या सनकी होना ही चाहिए, ऐसी मूर्खतापूर्ण कल्पना कुछ लोगों की थी। उसे कोई-न-कोई व्यसन भी होना ही चाहिए, ऐसी अपेक्षा भी की जाती थी। खाडिलकर में इस प्रकार के कोई भी दुर्गुण न थे। वैसे उन्हें तम्बाकू की आदत थी। परन्तु इसे व्यसन कहना उचित न होगा क्योंकि सन् 1929 में जब वे एक वर्ष के लिए कारावास में थे, तब उन्होंने बड़ी आसानी से यह आदत छोड़ दी थी।

नाट्यकला से खाडिलकर को असीम प्रेम था। सन् 1910 में 'केसरी' छोड़ने के बाद उन्होंने नाटक के माध्यम से पैसा कमाने का विचार किया। नाटक लिखकर उन्होंने पैसा कमाया भी। परन्तु नाट्यकला को मात्र व्यवसाय न मानकर कोई आदर्श सामने रखते हुए उन्होंने अपने सारे नाटक लिखे। केवल मनोरंजन के हल्के उद्देश्य से उन्होंने एक भी नाटक नहीं लिखा।

अपने समकालीन नाटककारों से उनके हमेशा मैत्रीपूर्ण संबंध रहे। वे उनकी हर संभव सहायता करते थे।

खाडिलकर ने धन के लालच में नाटक मंडलियों के आगे कभी हाथ नहीं फैलाया। ऐसा कहा जाता है कि बाल गंधर्व ने 'द्रौपदी' नाटक पर कम्पनी का अत्यधिक पैसा लुटाया। कम्पनी का दिवाला निकलने लगा। ऐसे समय कंपनी का सारा उधार समाप्त होने तक उन्होंने मानधन न लेने का निर्णय लिया। सन् 1910 में 'कीचकवध' नाटक पर सरकार ने पाबंदी लगा दी थी। बाद में जब वह हटायी गयी तो महाराष्ट्र नाटक मंडली ने इस नाटक को पुन: रंगमंच पर प्रस्तुत किया। खाडिलकर ने इन प्रस्तुतियों के लिए भी पैसे नहीं लिये। 'मानापमान' तथा 'विद्याहरण' को मंच पर प्रस्तुत करने की अनुमति बलवंत नाटक मंडली ने खाडिलकर से ली। चिंतामण राव कोल्हटकर ने जब पैसों के बारे में पूछा, तब खाडिलकर बोले "पैसे क्या पेटी में पड़े हैं?" कोल्हटकर झेंप कर बोले "नहीं! बस यूँ ही हिसाब के लिए पूछा था।" खाडिलकर तुरंत बोले, "जब पेटी में पैसे नहीं हैं तब उनका हिसाब कैसा? जब पेटी में पैसे आ जायेंगे तब मैं ले लूंगा।"

'संगीत मानापमान' नाटक के लिए गोविंदराव टेंबे ने संगीत दिया था। खाडिलकर ने उन्हें इसके लिए आठ सौ रुपये दिए। उन्होंने माँगा भी नहीं था और जिन्हें लेने को टेंबे तैयार न थे फिर भी दिये। स्वयं अपने लिए धन पाने का उन्होंने कभी लोभ नहीं किया परन्तु दूसरे के देने की बात वे कभी नहीं भूले।

खाडिलकर ने मराठी रंगभूमि के विविध विभागों में प्रवेश कर अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ी है। नाटक कंपनियों, नाटककारों एवं कलाकारों की अपनी ओर से हर संभव सहायता की। नाट्यसृष्टि के विकास में सभी प्रकार के कार्य करके उन्होंने मराठी रंगमंच की एक गौरवशाली परंपरा क़ायम की। इसीलिए नाट्य प्रेमियों ने बड़े प्रेम और सम्मान के साथ, उन्हें 'नाट्याचार्य' की उपाधि से विभूषित किया।

पत्रकार

खाडिलकर ने सन् 1896 में 'केसरी' कार्यालय में प्रवेश कर अपने पत्रकार जीवन का आरंभ किया। सन् 1929 में साबरमती जेल से वापस आने पर 'नवाकाळ' का संपादकीय संचालन-सूत्र उन्होंने पुनः अपने हाथों में नहीं लिया। खाडिलकर के जीवन का समय प्रदीर्घ रहा। इस लंबी यात्रा के बीच-बीच वे स्वतन्त्रता आंदोलन के महत्त्वपूर्ण कार्य भी करते रहे।

समाचार-पत्र का व्यवसाय उस समय नवीन व्यवसाय था। अभी उसके विकसित होने में कुछ वर्षों का समय अपेक्षित था। प्रजातांत्रिक परंपरा में जन-जागृति व अन्याय परिमार्जन का कार्य इस व्यवसाय ने देर से शुरू किया। महाराष्ट्र में यह कार्य विष्णुशास्त्री चिपलूणकर की 'निबंध माला' नामक मासिक पत्रिका से शुरू हुआ। बाद में तिलक तथा आगरकर भी इनके साथ आ मिले और सन् 1881 में 'साप्ताहिक केसरी' शुरू हुआ। इसी 'केसरी' के पूर्णतया लोकमान्य तिलक के हाथों में आने के बाद खाडिलकर ने सन् 1896 में अपना पत्रकारिता का कार्य शुरू किया।

'केसरी' का प्रकाशन शुरू करते समय चिपलूणकर और तिलक ने अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा था—

> "इस समय छप रहे अन्य देशी समाचार पत्रों के समान इस नए पत्र में भी समाचार तथा राजनीति विषयक बातें तो होंगी ही परन्तु इसके साथ ही, जनता की परिस्थिति के संबंध में लेख तथा ग्रंथों पर टीकात्मक परामर्श आदि भी प्रसंगानुसार प्रकाशित होते रहेंगे। बादशाही राज्य में चापलूसी करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। यह देश के लिए घातक है। इस पत्र में ऐसा नहीं होगा। अपने नाम के अनुरूप ही, केसरी में स्पष्ट एवं पक्षपातरहित बौद्धिक विवेचन किया जायगा।"

खाडिलकर के युवाकाल में पुणे के **'केसरी'**, **'ज्ञानप्रकाश'**, **'सुधारक'**, **'करमणूक'** तथा बंबई से प्रकाशित **'विविध ज्ञान विस्तार'** पत्र विशेष प्रचलित थे। इन सब पत्रों में अधिकांश लेखन निबंध जैसा ही रहता था। संपादक के अलावा अन्य विद्वानों के लेख भी इनमें छपते थे। खाडिलकर के शुरू के कुछ लेख 'विविध ज्ञान विस्तार' में प्रकाशित हुए थे। उनका 'राष्ट्रीय महोत्सवांची आवश्यकता' शीर्षक निबंध 'केसरी' में छपा था। उनके इस लेख की शैली कुछ इस प्रकार की थी :

> "यूनान राज्य में राष्ट्रीय महोत्सवों ने जो कार्य कर दिखाया, यज्ञ-महोत्सवों से हमारे पूर्वजों को जो लाभ हुआ, उसी प्रकार के कार्य शिवाजी से पूर्व हुए स्वराज्य आंदोलन के समय महाराष्ट्र के राष्ट्रीय महोत्सव कर दिखाते थे। संत एकनाथ जैसे साधु महात्मा अनेक उत्सवों तथा मेलों में स्वयं उपस्थित होकर, जनसाधारण को ऐहिक तथा पारमार्थिक बातें समझाने में कभी पीछे नहीं हटे। भजन-कीर्तन के मेलों में भक्तिरस से ओतप्रोत पद सुनकर भगवान पांडुरंग (विष्णु के एक अवतार) के चरणों में तल्लीन हो जाने वाले श्रोता-समुदाय को अपनी प्रसादपूर्ण वाणी से सामाजिक व धार्मिक विषयों पर उपदेश देने को संत तुकोबा सदैव तत्पर रहते थे। ऐसे राष्ट्रीय महोत्सवों के समय चैतन्यादि संत उत्तरी भारत से कृष्णा-गोदावरी से स्निग्ध पुनीत महाराष्ट्र में आते थे। उनके पारमार्थिक गहन विचार, नैतिक आचार-विचार के साथ-साथ अनेक लोगों, प्रजापतियों एवं प्रदेशों के वर्णन महाराष्ट्र के लंगोटधारी निर्धन से लेकर बड़े-बड़े सरदार और जागीरदार एक साथ सुन सकते थे। पश्चिमी सभ्यता से उत्पन्न समाचार पत्र जैसी संस्थाओं के हाथों भी जो कार्य ठीक तरह से नहीं हो पाता, उसे ये राष्ट्रीय महोत्सव अच्छी तरह सम्पन्न कर सकते हैं। समाचार पत्रों के उपयोग तथा लाभ सीमित हैं किन्तु जनशिक्षा के कार्य में राष्ट्रीय महोत्सवों से होनेवाले लाभ अनगिनत हैं…"

सन् 1897 के शुरू में, पुणे में प्लेग फैलने पर खाडिलकर सांगली आ गये। सांगली में वे अधिक दिनों तक नहीं रह सके। प्लेग के समय सरकारी अधिकारियों ने जनता पर भारी अत्याचार किये थे। प्लेग का प्रकोप अब कम हो चला था। तिलक विश्राम के लिए कुछ दिन सिंहगढ़ जाने का विचार कर रहे थे। उन्होंने खाडिलकर को तुरंत पुणे आने के लिए पत्र लिखा।

खाडिलकर जब पुणे पहुँचे, तब तिलक सिंहगढ़ जा चुके थे। 'केसरी' कार्यालय में जाकर उन्होंने देखा कि अभी अग्रलेख तैयार नहीं है। अकाल एवं प्लेग से लोग हताश हो चुके हैं। उनमें नया उत्साह जगाने की आवश्यकता थी। शिवाजी उत्सव का समय पास आ रहा था। जनता को पुनः कार्यरत बनाने की आवश्यकता को समझ कर उन्होंने 'विभूति पूजा' शीर्षक से एक लेख लिखा। उनकी संपादन क्षमता कितनी विलक्षण थी, इसका पता इस लेख से

चलता है। 'विभूति पूजा' लेख के आरंभिक अंश इस प्रकार हैं :

> "आह्लाददायक अथवा भयानक, कोमल अथवा उग्र या इन दोनों के योग्य मिश्रण से बनी इस सृष्टि के भव्य स्वरूप को देखकर और महान् पुरुषों के पुण्यश्लोक चरित्र को सुनकर या उनका मनन करने पर मनुष्य के भीतर स्वाभाविक रूप से बसनेवाली आश्चर्य बुद्धि स्वयं जाग्रत होती है। किसी वस्तु अथवा वृत्ति को देखकर जब मनुष्य आश्चर्यचकित होता है तो उस मनुष्य अथवा वस्तु को प्रणाम करके अपनी तन्मयता दिखाना, उसकी पूजा-अर्चना करके अपना प्रेम प्रगट करना भी मानव धर्म के अनुरूप ही है। निर्जीव सृष्टि में कहीं भी, ईश्वर का अंश दृष्टिगोचर होने पर उसके प्रति प्रेम तथा आश्चर्य जाग्रत होने जैसा (हृदय में भक्तिभाव स्रोत के फूटने की तरह) अत्युत्तम गुण मनुष्य में दूसरा नहीं है। ऐसा राष्ट्र, जहां विभूति पूजा न होती हो मुश्किल से मिलेगा और जिस समाज में इस गुण का लोप होता जाता है, वह समाज मरणोन्मुख हो चला है, यह समझ लेना चाहिए। यूरोप में कितनी ही राष्ट्रीय व धार्मिक क्रांतियों के कारण ईसाई धर्म से लोगों की श्रद्धा टूटने लगी थी तब इसी विभूति पूजा ने इन राष्ट्रों को संकट से उबारा। कार्लाइल के मतानुसार समाज के जीवन व उत्कर्ष के लिए विभूत-पूजन जैसा दूसरा कोई साधन नहीं। भक्तिभावरहित मनुष्य किसी भी कला अथवा शास्त्र को सीखने के योग्य नहीं, ऐसा अपने देश के सभी साधु-संत और अवतारी पुरुष अपने अनुयायियों से कहते रहे हैं। क्योंकि किसी भी मनुष्य अथवा वस्तु के प्रति जिसके मन में भक्तिभाव उत्पन्न नहीं होता, उसके कार्य हमेशा समाज को दुख के कुएँ में झोंकनेवाले ही होंगे।"

खाडिलकर के लेखों में सही और युक्तिपूर्ण बातें कहने की शैली तर्कशुद्ध हुआ करती थी। वे विद्वान होने के साथ-साथ कलाकार भी थे। आशय तथा अभिव्यक्ति—दोनों ही दृष्टि से वे अपने लेख सुंदर और सही ढंग से प्रस्तुत करने का हमेशा प्रयत्न करते।

विदेशी हुकूमत के विरुद्ध असंतोष की आग भड़काने का कार्य भी उन्हें सम्पन्न करना था। ऐसी भावना कि अंग्रेजों का शासन ही न्यायपूर्ण शासन है, भारतीय जनता के मन में बना देने का ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अनुचरों ने एक व्यवस्थित प्रयत्न किया। इसमें वे काफ़ी सफल भी हुए। शासन को ही ईश्वर मानकर लोग उसकी शरण में जाने लगे। शासन और न्याय भिन्न-भिन्न हैं, यह उन्हें समझाना आवश्यक था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पक्षपातपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण वृत्ति लोगों की दृष्टि में लाना अत्यंत जरूरी हो गया था। 'क़ायदा व न्याय' लेख इस दृष्टि से विचार करने योग्य है। इसके कुछ विचार इस प्रकार हैं :

> "क़ानून का अर्थ है कृत्रिम न्याय। और न्याय है, स्वाभाविक क़ायदा। न्याय है परमेश्वर के घर का, जबकि क़ानून है आदमी का बनाया हुआ। न्याय—विश्व के कल्याण के लिए; लेकिन क़ानून विशिष्ट समुदाय के लाभ के लिए। न्याय सभी में रहता है; पर क़ानून का स्थान होता है—केवल मनुष्यों की बस्ती में। न्याय का पाप से परिचय नहीं होता जबकि क़ानून पुण्य करने का बहाना करता है। न्याय की आंखों को केवल सत्य ही दिखता है परन्तु क़ानून वर्ण, जाति, धर्म आदि को भी देखता रहता है। न्याय के लिए सारे संसार में न कोई अपना है, न इष्टमित्र, न आप्त बांधव; किन्तु क़ानून के लिए ये सभी होते हैं। अतः ऐसी परिस्थिति में सामान्य लोग क़ानून को विशेष महत्त्व न दें तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। सभी लोग अंधेरे में चल रहे हैं, यह देखकर परमेश्वर ने और राजा ने मिलकर एक दीप बनाया। राजा ने चार शीशे के टुकड़ों को जोड़कर बाहरी आवरण तैयार किया और उसके अन्दर ईश्वर द्वारा निर्मित प्रकाश रख दिया। शीशे के इन्हीं टुकड़ों का नाम है—क़ानून और इस दीप का प्रकाश है, न्याय!"

कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर की वृत्ति में तत्त्वनिष्ठा दृढ़ होने के कारण तत्त्व के प्रचार के लिए किसी भी विषय पर लिखा गया उनका लेखन ओजस्वी, वज़नदार तथा प्रभावशाली होता था। निम्नलिखित उद्धरण इसका उत्तम उदाहरण है—

> "यह वे जानते हैं, कि मालिक कैसे बनना है और गुलामों से कसकर काम लेने की भी उन्हें आदत रही है। मालिक बनने और गुलाम बनाने के अतिरिक्त तीसरी अवस्था का उन्हें अपने संपूर्ण जीवन में कभी भी अवसर नहीं मिल पाता है। स्वतंत्र मनुष्य का चेहरा कभी उनके देखने में ही नहीं आता, समानता का रिश्ता इनके खून में होता ही नहीं और समान दर्जे के लोगों को एक साथ जुटाने के लिए समानता की मजबूत रस्सी से बांधना उन्हें असंभव लगता है। यह मन का दोष नहीं; यह व्यवसाय का दुर्गुण है। जो अन्न खाया जाता है, उसी अन्न का यह पाप है। जैसा अन्न वैसा मन, जैसा व्यवसाय वैसी बुद्धि! कठोर मालिक और दीन गुलाम, ये एक ही मनोवृत्ति के दो रूप हैं। उत्तम गुलाम कठोर मालिक बन सकता है और प्रसंग आने पर क्रूर मालिक भी दीन गुलाम बन सकता है। वही शरीर, वही मन और वही बुद्धि प्रसंगानुसार मालिक या गुलाम के रूप में प्रगट होती हैं। नौकरी के कई वर्ष गुलाम की तरह जिन्होंने वरिष्ठ अधिकारियों की 'हां जी...हां जी' करने में व्यतीत किये, वही बड़े पद पर पहुंचते ही

मजिस्ट्रेट ने इस समारोह पर रोक लगा दी। कृष्णाजी खाडिलकर ने इस पर 'केसरी' में लेख लिखा, जिसमें उन्होंने अपने इस परम मित्र के प्रति अपना आदर भाव बड़ी भावपूर्ण भाषा में व्यक्त किया। साथ ही, उन्होंने इसकी खोज भी बड़ी मार्मिक रीति से की कि देश भक्तों को प्रेम व श्रद्धा किन मूल स्रोतों से प्राप्त होती है :—

> "अधिकारियों के इस घमंड में कोई अर्थ नहीं कि लक्ष्मी उनके पक्ष में है। अकेली लक्ष्मी का लोगों के मन पर प्रभाव नहीं जम सकता। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों मिलकर ही समाज के मन को आकर्षित करती हैं। संपत्ति, दर्जा, मान-मर्यादा इत्यादि मार्गों से लक्ष्मी का प्रभाव पड़ता है, और विद्वत्ताप्रचुर ग्रंथ तथा प्रतिभा संपन्न लेखों द्वारा सरस्वती का प्रभाव पड़ता है। अपनी विद्वत्ता व प्रतिभा से लोगों के चित्त को आकृष्ट करने वाले लेखक लक्ष्मी की आज्ञा से पैदा नहीं होते। सरस्वती के प्रभुत्व का यह स्थान ईश्वर ने राजा-महाराजाओं के नियंत्रण में नहीं रख छोड़ा। ऐसे लेखक उसी ईश्वर की कृपा से उत्पन्न होते हैं, उसी की छत्र छाया में पलते हैं और उसी की आज्ञा से अंगीकृत कार्य को पूर्ण करते हैं। जब प्रजाजन शस्त्रहीन, दुर्बल, आपस में लड़ने-झगड़नेवाले, एकता के अनुशासन से वंचित रहते हैं, तब उनके उद्धार का कार्य ईश्वर सर्वप्रथम अपने प्रतिभासंपन्न एवं प्रिय लेखकों के माध्यम से करते रहते हैं।"
>
> "जिन लेखकों की प्रतिभासंपन्न लेखनी के द्वारा राष्ट्रीय पक्ष को इतना महत्त्व प्राप्त हुआ है, उन लेखकों की सूची में देशभक्त परांजपे ने अपनी दस वर्ष की लोक सेवा के कारण ही महत्त्वपूर्ण स्थान पाया है। देशभक्त परांजपे मराठी भाषा की एक विशेष आकर्षक शैली के प्रवर्तक हैं और परमेश्वर द्वारा सौंपे गये मराठी भाषा के प्रभुत्व को उन्होंने पिछले दस वर्षों में अत्यंत प्रेम और अपनत्व से एवं निष्ठापूर्वक राष्ट्रीय पक्ष के चरणों में समर्पित किया है। सवा साल तक जेल में कष्ट सहकर कारागृह के एकांत में, तुम्हारी दी हुई धरोहर का तुम्हारे ही कार्य में मैंने उपयोग किया है, ऐसा निवेदन पिछले सवा साल की छुट्टियों में परमेश्वर के चरणों में पहुँचाकर देशभक्त परांजपे लौट आये हैं। ऐसी घड़ी में उनकी देश सेवा के लिए लोगों के मन में प्रेम और आदर की भावना क्यों न पैदा हो ?"

लोकमान्य तिलक पहले से ही सशस्त्र राजनीति के समर्थक थे। वे प्रखर स्वतंत्रतावादी थे। राष्ट्रीय पक्ष के प्रारंभ से स्वराज्य की यह लड़ाई उन्हें दो सीमाओं पर लड़नी पड़ी। उनकी चाल क्रूर विदेशी सत्ता के विरुद्ध सतत् प्रहार करने की थी। प्रसंगवश स्वराज्य संग्राम में अड़ंगा डालनेवाले अपने लोगों

पर भी प्रहार करने में भी वे पीछे नहीं हटते थे। प्रारंभिक समय में, इस संदर्भ में उन्हें गुरुतुल्य न्यायाधीश महादेव गोविंद रानाडे की भी आलोचना करनी पड़ी। उन्होंने ऐसी ही तीव्र समालोचना गोपाल गणेश आगरकर की भी की जब कि आगरकर उनके एक समय के परम मित्र थे।

कृष्णाजी खाडिलकर ने लोकमान्य तिलक के ध्येय और मार्ग का समर्थन किया। नरम दल वालों की आलोचना का अवसर आने पर भी वे आगे-पीछे न देखते थे और उनकी पूरी खबर लेते थे।

सन् 1910 में, खाडिलकर को 'केसरी' पत्र छोड़ना पड़ा। इस संबंध में **'गतगोष्टी'** नामक आत्म चरित में उन स्मृतियों को संजोते हुए श्री नरसिंह चिंतामण केलकर कहते हैं—

> "खाडिलकर की और मेरी 'केसरी' के विषय में जैसी सहमति होनी चाहिए थी, वैसी रही नहीं। मुख्य मतभेद सरकार के संबंध में लिखी गयी वार्ता के विषय में नहीं होता था। क्योंकि दण्ड संहिता की दृष्टि से क्या कुछ नहीं लिखना चाहिए, यह खाडिलकर भी जानते थे। परन्तु प्रतिपक्ष अर्थात् संपूर्ण नरम दल तथा उस पक्ष के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के संबंध में कितनी अवमानना की जाये—इसको लेकर हम दोनों के विचार मेल नहीं खाते थे। प्रतिपक्ष की आलोचना तो मैं भी करता था परन्तु खाडिलकर की तरह उन्हें गोबर के गड्ढे में पूरी तरह ढकेलने को मैं तैयार नहीं हो पाता था।"

'सुराराध्य आणि दुराराध्य', शीर्षक से 5 जनवरी, 1909 के लिए खाडिलकर द्वारा लिखा गया 'केसरी' का अग्रलेख इस दृष्टि से पठनीय है। सूरत कांग्रेस के बाद नरम दल के नेताओं ने अपना एक अलग पंथ (गुट) बना लिया था। मद्रास अधिवेशन में इस पंथ ने शासन के इस ध्येय तथा नीति का समर्थन करने की नीति अपनायी। शासकों के आगे-पीछे पूंछ हिलाने की वृत्ति के कारण स्वराज्य आंदोलनों को और प्रजा को किस प्रकार नुकसान पहुँचाया जा रहा है, इसका मार्मिक एवं मर्मभेदी चित्रण खाडिलकर ने इस लेख में किया है। इस प्रसंग में उन्होंने डॉ० रासबिहारी घोष, बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और नामदार गोखले जैसे सम्मान्य नेताओं पर भी प्रखर प्रहार किए। इस लेख के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

> "मद्रास अधिवेशन की सभा पिछले हफ्ते निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हुई···सभा में पारित किये गये प्रस्तावों में लार्ड मोर्ले एवं लार्ड मिंटो को कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देने का प्रस्ताव था और अन्य प्रस्ताव औपचारिक थे या जबरदस्ती किसी तरह सामने लाये गये थे। सूरत में नरम

दल वालों ने राष्ट्रीय सभा की परम्परा को ठुकराया और नये पन्थ के कारण उन्हें मत बदलने का अवसर मिल गया। अंत में मद्रास में डॉ० घोष तथा नामदार गोखले ने अधिवेशन को मतांतर की दीक्षा दी। यह नया मतांतर कौन-सा है ? इस नये राजकीय धर्म के सारे सूत्र 'सुराराध्य' शब्द में संघटित हैं। डॉ० घोष और ना० गोखले का संपूर्ण राष्ट्र को संदेश है कि हे महानुभावों ! आप अधिकारियों की मर्जी के अनुसार सँभलकर बर्ताव करो; जो कुछ वे देंगे, उसी में संतोष मानकर कृतज्ञ बने रहो ; और उनका हित ही तुम्हारा हित है, यह मानकर कि वे आपको 'सुराराध्य' कहें, ऐसा बर्ताव करते जाओ ।' 'सुराराध्य' शब्द से इस धर्म के तत्त्व अच्छी तरह व्यक्त होते हैं। 'दुराराध्य' के विरुद्ध अर्थ 'सुराराध्य' शब्द की अक्षर रचना से स्पष्ट होता है, यद्यपि यह व्याकरण की दृष्टि से आक्षेपपूर्ण है। इतना ही नहीं व्याकरण की दृष्टि से इसका अर्थ लिया जाये तो क्षणिक उत्तेजना देने वाले क्षुद्र पदार्थों से संतुष्ट होने का नरम दल वालों का धर्म प्रगट करने की सामर्थ्य भी इसी शब्द में है। राष्ट्रीय पक्ष को 'दुराराध्य' और नरम दल वालों के पक्ष को 'सुराराध्य' मानने में कोई आपत्ति नहीं···"

"ना० गोखले विद्वान हैं, वक्ता हैं, और देश के हित के लिए व्याकुल होकर कष्ट सहनेवाले हैं। किंतु अब प्रश्न विद्वत्ता का नहीं, बहुश्रुतता का नहीं, मार्मिकता का नहीं, स्वार्थ त्याग का भी नहीं। यह प्रश्न राजनैतिक मुस्तैदी का है। प्रजाजनों की राजकीय नीति का है। दुर्बल प्रजा को प्रबल अधिकारियों से अपना अधिकार कैसे प्राप्त करना चाहिए, इस राजनीतिक मार्ग का है···एक पक्ष के लिए जितनी सहानुभूति है···लगभग उतनी ही दूसरे पक्ष के लिए होनी चाहिए। ऐसे अवसर पर व्यर्थ प्रेम का प्रदर्शन कर अपनी गठरी दूसरों को सौंप देना राजनीतिज्ञ अथवा मेधावी मनुष्य का लक्षण निश्चय ही नहीं है···"

"जिस प्रजा को अपने इस बाहुबल का मूल्य ज्ञात है; और योग्य क़ीमत लिये बिना जो प्रजा इस शक्ति को अधिकारियों के हाथ में दे देने को तैयार नहीं रहती, वह प्रजा कितनी ही कमजोर, निर्धन अथवा निहत्थी क्यों न हो, इस स्वभावसिद्ध शक्ति का उचित सौदा या लेन-देन करके बलवान, धनवान और सशस्त्र हो सकती है। इस शक्ति का उचित उपयोग हिन्दी राष्ट्र के द्वारा करवा लेना—'नेटिव' राजनीतिज्ञों के पास यही अब राजनीतिक मुस्तैदी शेष रही है। लेकिन राजनीति को भूलकर प्रेम प्रकट करना, दुर्बल एवं नि:शस्त्र प्रजा के लिए पूर्णरूप से आत्मघातक होने के कारण, और ऊपर लिखी गयी अदृश्य शक्ति की बिक्री के बिना अन्य

कोई भी उपाय हम प्रजाजनों के पास न होने के कारण, इस समय 'सुराराध्य' का व्रत लोगों को सिखाना तो अज्ञानी जनसमूह को उसके सत्त्व से वंचित कराकर श्वानों का चातुर्य स्वीकार करना है। हमारा कथन यह नहीं है कि प्रेम के बदले में प्रेम नहीं दिखाइये परन्तु इस कार्य में धीरोदात्त गजराज का गांभीर्य स्वीकारना चाहिए । बदनोदर दिखानेवाले श्वान की 'सुराराध्य' वृत्ति से देशकार्य संपन्न होना असंभव है।"

राजनैतिक क्रांति को सफल बनाने के लिए पहले वैचारिक क्रांति लाना आवश्यक होता है। भारतीय राजनीति को वैचारिक नींव देने का प्रयत्न लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी ने किया। खाडिलकर लोगों के सामने सतत् यही वैचारिक भूमिका रखते रहे और क्रांति के कार्य में सम्मिलित होने के लिए उनके मन को तैयार करते रहे।

खाडिलकर का मित्र-परिवार ज्यादा बड़ा नहीं था। उनके कुछ ही विशेष मित्र थे। इनमें **'चित्रशाला'** प्रेस के वासुकाका जोशी और **'काळ'** पत्रिका के संपादक शिवराम महादेव परांजपे प्रमुख थे।

परांजपे की 'काळ' पत्रिका ने उस समय के युवकों को स्वराज्योन्मुख करने में बहुमूल्य योगदान दिया था। उनकी लेखन शैली व्याजोक्ति व वक्रोक्ति का आधार लेकर उपहास मूलक व अत्यंत व्यंग्यपूर्ण थी। खाडिलकर के लेखन पर उनके इस मित्र की शैली का प्रभाव पड़े बिना न रहा।

एक बार किसी कारणवश 'काळ' पत्रिका की सम्पूर्ण सामग्री को एक साथ लिख डालने का दायित्व खाडिलकर पर आ पड़ा। इस अवसर पर उन्होंने परांजपे की शैली का अनुकरण इतनी कुशलता से किया कि किसी को भी इस बात का पता तक नहीं लग पाया।

'लक्षणा' के आधार पर लिखा हुआ लेखन प्रश्न चिह्न से अंकित करने पर उसमें अलग ही प्रभाव पैदा होता है यह बात खाडिलकर के ध्यान में आई। उन्होंने ऐसे प्रश्न चिह्नों का प्रयोग बड़ी कुशलता से **'नवाकाळ'** के अग्रलेख में भी किया। **'सन्मान कोणाचा करावयाचा ?'** इस शीर्षक से 29सितम्बर, 1923 के 'नवाकाळ' का संपादकीय लेख इस शैली का उत्कृष्ट नमूना कहा जा सकता है।

जब बंबई के गवर्नर लॉर्ड वेलिंगडन सेवानिवृत होकर विलायत लौट रहे थे; तब कुछ लोगों ने उनके सम्मान का आयोजन किया। राष्ट्रीय पक्ष के कार्यकर्ताओं ने यह समारोह न होने देने का निश्चय किया। विरोध का बड़ी भारी बवंडर पैदा हुआ। इस पृष्ठभूमि में खाडिलकर के अग्रलेख का निम्नलिखित उद्धरण पढ़ने पर इसका आस्वाद अच्छी तरह लिया जा सकता है :

"बंबई के कार्पोरेशन से अवकाश ग्रहण करनेवाले गवर्नर साहब को मानपत्र देने का प्रश्न अभी कुछ पीछे पड़ गया है। बंबई का जनमत इस सम्मान के विरुद्ध है। इसी कारण गवर्नर साहब के पिछलग्गुओं के लिए भी इस प्रश्न को सामने लाना बड़ा मुश्किल लग रहा है। बंबई का जनमत किस ओर झुका है, यह पिछले चार पाँच दिनों में स्पष्ट हो जाने के कारण अभी हफ़्ते-दो-हफ़्ते तो बंबई कार्पोरेशन में यह प्रश्न उठने की संभावना दिखाई नहीं देती। फिर भी, अक्टूबर के दूसरे या तीसरे सप्ताह में इस प्रश्न पर चर्चा फिर से शुरू हो सकती है। बंबई कार्पोरेशन में अलग-अलग सिफ़ारिशों से मताधिक्य की गठरी किसी तरह बाँध भी ली जाये तो भी जब जनमत इतना क्षुब्ध है, तब अस्ताचल की ओर ढलते हुए गवर्नर साहब ऐसा मानपत्र कैसे स्वीकार कर सकेंगे? मानपत्र तो कोई भी दे सकता है। गणेशखिंड या मलाबार हिल का कोई खानसामा भी सोने-चाँदी का एकाध करंडक (कटोरा) मानपत्र के साथ जाते हुए गवर्नर को अर्पण कर सकता है। यह असंभव हो, ऐसा तो नहीं, परन्तु यह मानपत्र स्वीकार करते समय यह सम्मान प्रजाजनों की ओर से हो रहा है, ऐसा गवर्नर साहब कैसे मान सकते हैं भला?"

"जिस गवर्नर के राज्य काल में महात्मा गांधी को छः माह की सज़ा सुनायी गयी, उसी गवर्नर का सम्मान करने के लिए लोगों को कौन किस मुँह से कहेगा? सिडनहॅम और वर्तमान गवर्नर का नामोच्चार करना भी पाप समझा जायेगा। ऐसी परिस्थिति के रहते हुए, सम्मान करने के लिए कौन आगे आएगा? मुसलमानों को किसका सम्मान करना है? क्या अली बंधु तथा अन्य मुसलमान नेताओं पर करांची में चलाये गये मुक़द्दमे की बात लोग भूल गये? महात्मा गांधी का कार्य लोगों के हाथों से पूर्णरूप से सम्पन्न न हो पा रहा होगा, परन्तु जिन्हें हम श्रेष्ठ साधु पुरुष मानते हैं—उन्हीं को गवर्नर साहब ने कारागृह में भेजा है, इसकी स्मृति भी भूल जाने की योग्यता मूर्ख बुद्धि लोगों में है, क्या ऐसा गवर्नर साहब समझ रहे हैं? अधिकारी वर्ग यह कैसे समझ रहा है कि मुळशी के सत्याग्रही क़ैदियों में से देश-भक्त देव की पीठ पर पड़ी हुई मार के निशान मिटने से पूर्व ही महाराष्ट्र के लोग यह सोचने में मग्न हो जायेंगे कि गवर्नर साहब को मानपत्र किस करंडक में दिया जाये? यह समय कारावास की सज़ा भोगकर बाहर आये हुए लोगों का सम्मान करने का है। लाला लाजपतराय, देशबंधु दास, पं० मोतीलाल नेहरू, अकाली नेता और राष्ट्रीय आंदोलन के आधार स्तंभ जमनालाल बजाज जैसों का सम्मान आज लोग कर रहे हैं। सम्मानों और मानपत्रों की इस पवित्र स्रोतस्विनी में स्वयं भी

स्नान कर लेने की इच्छा ये ज़ालिम और अधम अधिकारी क्यों कर रहे हैं? अन्तःकरण में पश्चात्ताप उत्पन्न होने पर पापों को धो डालने के लिए पवित्र गंगा में स्नान करने का अधिकार पतितों को भी प्राप्त है, यह सच है; परन्तु नौकरशाही के अंतःकरण की वृत्ति के इस तरह बदल जाने तक नौकरशाहों को इस प्रकार के मानपत्रों के दंद-फंद में पड़ने की क्या आवश्यकता है?"

कुछ लेखों में उद्गारवाचक वाक्यों की ऐसी ही मालिका खड़ी करके खाडिलकर ने एक निराला ही प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। आज की तरह हर जगह पर उद्गारवाचक चिह्नों का प्रयोग उन्होंने नहीं किया। परन्तु वाक्यों की ध्वनि उद्गारवाचक ही है। 'वेड्यांचा चरखा' (पागलों का चरखा) शीर्षक से 4 जनवरी, 1925 के 'नवाकाळ' के संपादकीय के कुछ अंश निम्नप्रकार हैं—

"कुछ लोग महात्मा गांधी को पागल समझते हैं। इस पागल का चरखा बेलगांव कांग्रेस ने सिर आँखों पर कैसे उठा लिया, इस विषय में इन धूर्तों को आश्चर्य हो रहा है। बेलगांव कांग्रेस के मंडप में चौदह-पन्द्रह हज़ार स्त्री पुरुष उपस्थित थे। इसके अलावा जैसा कि अनुमान है कि कम-से-कम एक लाख लोगों ने विजयनगर कांग्रेस की यात्रा की। इतने विशाल जन समुदाय को इस चरखे का पागलपन कैसे नहीं दिख पाया, इस पर इस समय आलोचना हो रही है। लाख डेढ़ लाख लोगों की आँखों पर सम्मोहन का पर्दा डाल सकनेवाले इस महात्मा गांधी के पास कौन-सा जादू है, इस पर इन धूर्तों ने अब विचार करना शुरू कर दिया है।...'

"राष्ट्रीय सभा के पिछले पाँच-छः वर्षों का इतिहास ठीक तरह से देखने पर पता चलता है कि लोगों के मन में पक्का विश्वास हो गया है कि भारतीय राजकीय क्रांति के पास अवश्य ही कोई स्वतंत्र सैंक्शन उर्फ़ हथियार है। यदि यह विश्वास, यह पागलपन, न होता तो कलकत्ते की असहकारिता कांग्रेस, अहमदाबाद की कांग्रेस, गया की कांग्रेस, कोकोनाडा की कांग्रेस और कल की बेलगांव की कांग्रेस में घर-गृहस्थी वाले लाखों राजनीतिक यात्री कभी दृष्टिगोचर न होते। यह पागलपन न होता तो राजा-महाराजाओं से भी अधिक शाही ऐशो आराम में रहनेवाले पं० मोतीलाल नेहरू अपनी वकालत छोड़कर खादी धारण करने न आते। यह पागलपन न होता तो 30-40 हज़ार की मासिक आमदनी का अपना धंधा छोड़कर देशबंधु चित्तरंजन दास फ़कीर न बनते। यह पागलपन न होता तो हज़ारों सुखी गृहस्थों के सिर आज खादी टोपी न दिखती। यह पागलपन

> न होता तो बेलगाँव में कुलियों की तरह काम करने के लिए डेढ़ दो हज़ार स्वयंसेवकों की सेना विजयनगर में इकट्ठा न होती। यह पागलपन न होता तो गंगाधरराव की टट्टर की झोपड़ियाँ देखने के लिए डेढ़ लाख यात्री बेलगाँव में जमा न होकर लखनऊ में डॉ० परांजपे का भाषण सुनकर, लखनवी नवाबों के करोड़ों की लागतवाले शाही महलों को देखने के लिए दौड़ जाते। अकेले महात्मा गाँधी ही पागल हैं, ऐसा कहने में क्या तुक है?”

अपने लेख के संदर्भ में यदि कभी कोई अनुकूल दृष्टांत मिल जाता तो खाडिलकर उसे बड़ी कुशलता से लेख में जोड़ देने में सिद्धहस्त थे। संपूर्ण लेख में उस दृष्टांत को घुमा-फिराकर दुहराने की कुशलता भी उन्होंने दिखाई है।

‘वेश्येखातर मिठावर कर’ [वेश्या की खातिर नमक पर कर] इस शीर्षक का उनका एक संपादकीय प्रसिद्ध है। सन् 1923 में सरकार ने नमक पर दुगुना कर लगा दिया था। किसलिए ? लाव लश्कर पर मनमाना पैसा खर्च-कर सकने के लिए। बाइबिल में एक वृत्तान्त है कि हेरॉड नामक एक राजा ने अपनी रखैल को खुश करने के लिए जॉन बैप्टिस्टा नामक साधु पुरुष का खून किया था। खाडिलकर ने अपने लेख को मार्मिक बनाने के लिए इस दृष्टांत की मदद ली। इस लेख का एक अंश इस प्रकार है—

> “अपनी नीच वासनापूर्ति के लिए साधु पुरुष का मस्तक काटने का जो भयंकर पाप राजा हेरॉड ने किया, उससे भी भयंकर पाप सरकार नमक पर दुगुना कर लगाकर कर रही है। मांटेग्यू वेब ने सोमवार की असेंबली की बैठक में नौकरशाही को जता दिया है कि किसको खुश करने के लिए यह कर बढ़ाया गया है ? सरकार लश्कर शक्ति के पीछे खामखाह भाग रही है। इस वेश्या का मनमाना खर्च चलता रहे, इसलिए नमक पर कर दुगुना कर दिया गया है। सेना की खुशामद के लिए नमक पर दुगुना कर लगाने का मतलब है, लाखों गरीबों की गृहस्थी की यातनाओं की अनदेखी उन्हें धीरे-धीरे मृत्यु मुख में झोंकना ! हेरॉड राजा ने एक वेश्या के चंगुल में फँसकर एक सज्जन का शिरोच्छेद किया; हिन्दुस्तान सरकार लश्करी की महत्त्वाकांक्षा के चंगुल में फँसकर लाखों लोगों का खून करने को तैयार हो गयी है।”

एक पत्रकार होने के नाते देश की विविध घटनाओं की ओर खाडिलकर का ध्यान रहता था। वे इन सब घटनाओं को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न करते थे। इसी प्रकार सन् 1925 में ‘मुमताज मुकद्दमा’ न केवल बंबई में बल्कि सारे भारत में बहुत प्रसिद्ध हो गया था।

इन्दौर नरेश की मुमताज नाम की रखैल को बावला नाम का एक रईस बंबई भगाकर ले आया था। तुकोजीराव महाराजा ने उसे फिर से भगाकर वापस ले जाने का षडयंत्र रचा। इस काम के लिए तय किये गये गुंडों ने बावला पर गोलियाँ चलायीं और मुमताज को भगा ले जाने का प्रयत्न किया।

इस मुकद्दमे के बारे में लगभग सभी छोटे-बड़े अखबारों ने लेख लिखे। बहुतों ने मर्यादा का ध्यान रखते हुए इस विषय पर चर्चा की किंतु इस प्रश्न के मूल रहस्य को खोजने की कोशिश खाडिलकर ने ही की। देशी रियासतों में चलनेवाली अनियंत्रित सत्ता की ओर अंगुलि निर्देश करके देशी राजा गण तथा ब्रिटिश सरकार सिद्धसाधक न्याय से एक दूसरे की मदद करके प्रजा को किस तरह परेशान किया करते हैं, इस पर खाडिलकरजी ने स्पष्ट विचार प्रकट किये।

विदेश की घटनाओं की ओर भी खाडिलकर बारीकी से ध्यान देते थे। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का उनका तुलनात्मक अध्ययन वैशिष्ट्यपूर्ण था। परराष्ट्रीय राजनीतिक घटनाओं का संकलन करते समय उन घटनाओं से भारतीय राजनीति के धुरंधरों को क्या शिक्षा लेनी चाहिए, इसे समझाने का लक्ष्य भी वे सामने रखते थे। बोअर युद्ध का विवेचन करते समय उनकी यही दृष्टि रही थी और विश्व युद्ध की नियमित मासिक समालोचना करने में भी यही दृष्टि उन्होंने दिखायी थी। रूस की जारशाही के विरोध में चल रहा जनता का आंदोलन, छोटे-से जापान की रूस पर महान विजय या भारत पर रूस के आक्रमण की आशंका में इंग्लैंड का संभावित भय इत्यादि अनेक परराष्ट्रीय विषयों पर अध्ययन-मनन पूर्वक लिखे गये उनके लेख आज भी पठनीय लगते हैं। दूसरे राष्ट्रों की राजनीति विषयक उनके सारे लेख बड़े युक्तिपूर्ण स्वतंत्र तथा रोचक हैं।

खाडिलकर के संपादकीय लेखों के शीर्षक बड़े आकर्षक और सरल होते थे। इस संबंध में, उनकी नीति यह होती थी शीर्षक पढ़कर ही वाचकों को विषय की धारणा तुरंत स्पष्ट हो जाए। खाडिलकर के कुछ लेखों के शीर्षक देखिए : ‘बॉम्ब गोळयाचा खरा अर्थ’ (बम के गोले का असली अर्थ), ‘हे उपाय टिकाऊ नाहींत’ (ये उपाय टिकाऊ नहीं), ‘तरी हे भयंकरच’ (तथापि यह भयंकर है), ‘निमक हराम सरकारी नोकर’ (नमक हराम सरकारी नौकर), ‘तुम्हीं काय करणार ते सांगा !’ (बताइये तो सही की आप करेंगे क्या), ‘अकाळ विकाळ शिक्षा’ (भयंकर सज़ा), ‘वेश्येखातर मिठावर कर’ (वेश्या की खातिर नमक पर कर), ‘महात्मा गांधी चुकले काय ?’ (क्या महात्मा गांधी ने गलती की ?), ‘वरवंटा फिरू लागला’ (सिल-बट्टा घूमने लगा), ‘एका घमेंडखोराचा

मृत्यू' (एक घमंडी की मौत), 'इंग्लंडची सद्दी संपली' (इंगलैंड का जोर समाप्त हुआ)।

संपादकीय अग्रलेखों के विवेचन के संबंध में भी खाडिलकर के विचार स्पष्ट थे। विषय का विवेचन स्पष्ट एवं सुसंगत होना चाहिए, विरोधी मतों को पूरे जोर-शोर से आड़े हाथों लेना चाहिए, संपूर्ण विवेचन में बार-बार मूल विषय पर आकर सदैव पाठक के मन पर अपने पक्ष का प्रभाव डालना चाहिए; इसी को वे "हैमरिंग" कहते थे। अग्रलेख पढ़ने पर पाठकों के मन में कहीं भी कोई शंका न रहे और वह स्पष्ट रूप से अपने पक्ष में आ जाना चाहिए।

समाचार-पत्र चलाते समय अपने ध्येय को खाडिलकर ने कभी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया। अपने ध्येय और अपनी नीति के विरुद्ध कोई वक्तव्य अपने पत्र में कहीं न आ पाये, इसके लिए वे सतर्क रहते थे। तब भी बहुत से समाचार-पत्रों में विज्ञापनों को व्यवसाय की दृष्टि से देखा जाता था। किंतु खाडिलकर के वृत्तपत्र में उनकी घोषित नीति के विपरीत जानेवाले विज्ञापन प्रकाशित नहीं हो सकते थे। मध्य भारत के एक महाराष्ट्रीय शासक को किसी परिस्थितिवश राज्य छोड़ना पड़ा, तब 'नवाकाळ' का सहारा लेने के उद्देश्य से उसने अपने दूत बंबई भेजे। लेकिन खाडिलकर ने उनसे मिलना भी अस्वीकार कर दिया।

खाडिलकर ने समाचार-पत्र व्यवसाय को ऊँचे स्थान पर पहुँचाने में भरपूर योगदान दिया। केवल जीविका निर्वाह के एक साधन के रूप में उन्होंने इस व्यवसाय को नहीं लिया। यह उनका जीवन व्रत था और इसी कारण गांधीजी की राजनीति को लोगों के सम्मुख सही रूप में रखने के लिए मोतीलाल नेहरू ने जब उन्हें दस हजार रुपयों का चेक देने का प्रयत्न किया तो उन्होंने उसे लेने से इनकार कर दिया।

वैयक्तिक निंदा या वाद विवादों को उन्होंने अपने पत्र में कभी भी स्थान नहीं दिया। वे मानते थे कि वैयक्तिक विवादों के लिए समाचार-पत्र में बेकार स्थान देना तो पाठकों पर अन्याय करना है, क्योंकि वह स्थान तो पाठकों के लिए सुरक्षित होता है और उस स्थान पर उन्हें वास्तव में उपयुक्त एवं उपयोगी वृत्त ही लिखना चाहिए।

'नवाकाळ' चलाते समय एक बार एक संपूर्ण पन्ने के लिए विज्ञापन के संबंध में एक अनुबन्ध करने का प्रश्न था, इस अनुबन्ध में यह शर्त थी कि निश्चित दिन, निश्चित पन्ने पर ही विज्ञापन प्रकाशित होना चहिए। खाडिलकर ने उस विज्ञापन को अस्वीकार कर दिया। विज्ञापन लानेवाले से उन्होंने कहा, "मेरा समाचार-पत्र विज्ञापन छापने के लिए नहीं। महत्त्वपूर्ण समाचार छापने के बाद यदि स्थान बचता हो तो विज्ञापन छपेगा। अपने प्रमुख उद्देश्यों में हम विज्ञापन देनेवालों का बंधन स्वीकार नहीं कर सकते।"

'नवाकाळ' दैनिक चलाने के लिए सदा ही बहुत अधिक पैसों की आवश्यकता होती थी। समय-समय पर कर्ज भी लेना पड़ता था। खाडिलकर की नीति जरूरत के अनुसार कर्ज लेकर समय पर उसे लौटा देने की थी। इसके लिए कई बार उन्होंने अपने घर के गहने भी गिरवी रखे परन्तु अपनी उद्देश्य विषयक नीति से समझौता नहीं किया। एक चुनाव के अवसर पर प्रतिपक्ष का एक उम्मीदवार 'नवाकाळ' के पास ज्यादा कीमत पर विज्ञापन देने आया। लेकिन खाडिलकर ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया।

आर्थिक व्यवहार सँभालते समय अपने समाचार-पत्र में काम करनेवाले सभी कर्मचारियों को उचित वेतन प्राप्त हो, यही उनकी इच्छा रहती थी। वेतन बढ़ाने के लिए योग्य कर्मचारी को प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं होती थी। हर महीने, सात तारीख को वेतन देना 'नवाकाळ' के कार्यालय की विशिष्टता थी। इस आत्मीयता के कारण काकासाहब खाडिलकर के प्रति कर्मचारियों के मन में नितांत आदर तथा निष्ठा की भावना उत्पन्न हो गई थी।

पैसे के विशुद्ध व्यवहार के कारण बाजार में भी 'नवाकाळ' की भारी प्रतिष्ठा थी। कतिपय व्यापारियों तथा व्यक्तियों का 'नवाकाळ' से गहरा संबंध हो गया था। ये लोग 'नवाकाळ' के चलते-फिरते विज्ञापन एजेंट ही थे!

मराठी समाचार जगत् में जो स्थिरता आयी और सुधार हुए, उसमें काकासाहब के संपादन कौशल का बहुत बड़ा योगदान है। 'लोकमान्य' शुरू करते समय उन्होंने देश-विदेश के समाचारों के लिए 'रायटर' एवं 'एसोसिएटेड प्रेस' नामक विश्वव्यापक संस्थाओं से संबंध जोड़े। समाचारों के वर्गीकरण के मामले में वे अपने सहकारियों को योग्य परामर्श देते थे। देश विदेश के महत्त्वपूर्ण विषयों पर अग्रलेख तथा छोटे लेख देने की उनकी पद्धति थी।

सन् 1923 में, अपना निजी समाचार पत्र 'नवाकाळ' शुरू करने के बाद, खाडिलकर के लिए इच्छानुसार सुधार करना आसान हो गया। इस कार्य को उन्होंने तेजी और उत्साह से पूरा किया। अंग्रेजी दैनिकों म, विशेषतः 'लंडन टाइम्स' में नियत स्थानों पर नियत बातें छापने की पद्धति थी—उसी प्रकार की पद्धति का उन्होंने 'नवाकाळ' समाचार-पत्र में प्रयोग किया। पत्र में ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं प्रशाखाओं को अवसर देना आवश्यक होता है, यह उन्होंने समझ लिया। इसके लिए विविध लोगों की पसंद के नानाविध स्तम्भ उन्होंने शुरू किये। अंग्रेजी दैनिकों ने चित्र छापना प्रारंभ किया तब उसकी उपयुक्तता को ध्यान में रखकर उन्होंने भी उनकी तरह ही चित्रों, व्यंग्य चित्रों और नक्शों या चार्टों का अपने समाचार-पत्र में समावेश करना आरंभ किया। 'ग्रंथ-ग्रंथकार', 'कृषि और किसान', 'व्यायाम व खेलकूद', 'व्यापारिक एवं औद्योगिक', 'बंबई के

बाजार भाव', इत्यादि विविध स्तंभ उन्होंने शुरू किये। सप्ताह में एक लघुकथा और क्रिकेट मैच जैसी लोकरंजक घटनाओं की लालित्यपूर्ण समालोचना देना भी उन्हें आवश्यक प्रतीत हुआ। उनका सतत् प्रयत्न रहा कि समय के अनुरूप ही 'नवाकाळ' का स्वरूप गठित हो।

समाचार-पत्र की दुनिया में दैनिक और साप्ताहिक दोनों प्रकार के समाचार पत्रों को खाडिलकर ने सफलतापूर्वक चलाकर दिखाया। 'केसरी' साप्ताहिक में तो उन्होंने इसके आरंभ से ही प्रवेश किया था। उसके बाद 'लोकमान्य' दैनिक का दायित्व सँभाला। आगे चलकर 1923 में अपना निजी दैनिक 'नवाकाळ' शुरू किया। 1925 में, इसी के साथ 'साप्ताहिक नवाकाळ' भी जोड़ दिया गया।

साप्ताहिक और दैनिक समाचार-पत्र के लेखन व संपादन की पद्धतियाँ भिन्न होती हैं। साप्ताहिक पत्र के वाचन और मनन के लिए पाठकों को अधिक समय मिलता है। इसमें स्वपक्ष का मंडन तथा प्रतिपक्ष का खंडन करनेवाले चर्चात्मक संक्षिप्त लेख और विस्तृत निबंधनुमा संपादकीय लेख अधिक उपयुक्त ठहरते हैं। समाचारों में भी पूरे हफ्ते में घटित घटनाओं पर एक साथ पूर्ण रूप से विचार करना पड़ता है। दैनिक पत्र में रोज़ ताज़ी खबरें देने से पहले उनका चयन, अपेक्षित महत्त्व एवं स्थान, इन पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है। इन खबरों के अनुषंग से संक्षिप्त विवरण लिखना पड़ता है। कुछ समाचार देते हुए उनका विन्यास करके, आकर्षक शीर्षक का प्रयोग करके उनके महत्त्व पर पाठकों का विश्वास अर्जित करना पड़ता है। काका साहब खाडिलकर ने साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रों के लिए लेखन-कार्य करते समय इन सब भिन्नताओं में बड़ी योग्यता से समन्वय साधा था।

खाडिलकर की संपादकीय जिम्मेदारी का वर्णन करते हुए इस विषय पर एक और दृष्टि से भी विचार करना होगा। स्वतंत्र एवं विकसित देशों के समाचार पत्रों के संपादक और परतंत्रता में जकड़े हुए तथा स्वातंत्र्य के लिए लड़ रहे, जनता में जागृति लाने के इच्छुक संपादक—इन दोनों में भारी अंतर होता है। किसी परतंत्र देश में बहुलांश जनता के अशिक्षित होते हुए भी, तथा सरकार की कुदृष्टि को झेलते हुए भी, समाचार-पत्र संपादन का अत्यंत कठिन व्रत उन्होंने निभाया।

वृत्तपत्र व्यवसाय को सफल बनाने के लिए योग्य सहयोगियों का चयन तथा उन्हें उचित मार्ग दर्शन प्रदान करने की व्यवस्था, दोनों बातें अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। इस दृष्टि से सोचने पर वे नयी संपादक पीढ़ी के पितामह हैं। 'लोकमान्य' और 'नवाकाळ' के संपादन काल में खाडिलकर की छत्रछाया में काम सीखनेवाले युवकों ने स्वतंत्र रीति से कार्य करके समाचार-पत्र व्यवसाय में सुयश अर्जित किया है।

इस संबंध में, एक और बात विशेष उल्लेखनीय है कि श्री नरहर रघुनाथ फाटक पहले से ही 'इंदुप्रकाश' के संपादकीय पद पर कार्यरत थे। यह पत्र नरम दल का मुख पत्र माना जाता था। अतः श्री फाटक और खाडिलकर के बीच मतभेद सम्बन्धी मामलों का होना स्वाभाविक ही था। फिर भी, श्री फाटक की विद्वत्ता को ध्यान में रखकर काकासाहब ने 'इंदुप्रकाश' के बंद हो जाने पर उन्हें अपने 'नवाकाळ' पत्र में सेवा प्रदान करने का आग्रह किया। अपनी इस उदार नीति से खाडिलकर ने फाटक का उत्तम सहयोग प्राप्त किया। प्रेम और परस्पर सद्भाव के बढ़ने पर फाटक काकासाहब के विशेष सलाहकार बने !

'केसरी', 'लोकमान्य' और 'नवाकाळ'—ये तीनों समाचार-पत्र खाडिलकर ने चलाये। 'केसरी' में उन्होंने तिलक के सहायक संपादक के रूप में काम किया। 'लोकमान्य' और 'नवाकाळ' उनके स्वतंत्र संपादकीय कार्यकाल में फले-फूले। देश परतंत्र था ! लिखने की आजादी पर बंधन लगे हुए थे ! घोर आर्थिक संकट था। जनता अशिक्षित थी और सर्वत्र मत-मतांतरों की हुड़दंग-सी मची हुई थी। ऐसी परिस्थिति में कृष्णाजी खाडिलकर ने जनता को योग्य मार्गदर्शन करने का कार्य किया। समाचार-पत्रों की दुनिया में उनका यह कार्य निश्चय ही महान् तथा आदर्श स्वरूप है !

वक्ता

जनजागृति के लिए निकले हुए देशभक्तों के हाथों में केवल लेखन की क्षमता होना, उस समय पर्याप्त न था। उनका उत्तम वक्ता होना भी जरूरी था। खाडिलकर के पास ये दोनों गुण थे। उनकी लेखनी जैसी तेज थी, वैसी ही जबरदस्त थी उनकी वाणी। वे लेखनी तथा वाणी दोनों हथियारों से सरकार के विरुद्ध हमेशा लड़ते रहे।

भाषण देने की कला का अभ्यास उन्होंने विद्यार्थी जीवन में ही किया था। पाठशाला की वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में उन्होंने हमेशा बड़ी आस्था से हिस्सा लिया। सन् 1937 में, सांगली हाई स्कूल सम्मेलन में उन्हें मुख्य अतिथि के रूप में बुलाया गया था। इस अवसर पर दिये गये अपने भाषण में उन्होंने अपने स्वयं उपार्जित वक्तृत्व कौशल के बारे में कहा—

> "मैं एक बड़ा वक्ता हूँ, ऐसा बताया गया है। इस कथन में से यदि गौरव का अंश निकाल दें तो यह सत्य है कि लड़कों के बीच बोलने की मुझे आदत-सी रही है। बच्चों के सामने बोलने के अभ्यास के कारण ही परवर्ती जीवन में जब कभी भी वक्ता बनने का अवसर आया, मैं उसे अच्छी तरह निभा सका। उन सम्मेलनों के मुझ पर यह उपकार ही हैं··· उस समय मैं तुतलाता भर था, अब शब्दजीवी हो गया हूँ।"

बी०ए० की परीक्षा पास करके काकासाहब खाडिलकर दो वर्षों तक सांगली में शिक्षक रहे। सांगली जैसी छोटी-सी रियासत में उस समय शिक्षकों को विशेष सम्मान मिलता था। सांगली में पानी के लिए नल लगाये गये, तब एक समारोह का आयोजन किया गया। वहाँ के राजा इस समारोह के अध्यक्ष थे। खाडिलकर ने इस समय आम जनता के सामने अपना भाषण दिया था। यह उनका प्रथम भाषण था।

1 सितम्बर, 1896 को खाडिलकर 'केसरी' कार्यालय में दाखिल हुए। पुणे में उस समय रोज ही नये-नये राजनीतिक, सामाजिक व औद्योगिक महत्त्व के प्रश्न उत्पन्न होते थे और तिलक पक्ष के प्रमुख कार्यकर्ताओं को इनमें हिस्सा लेना पड़ता था। श्री गणेश उत्सव और शिवाजी उत्सव में तो व्याख्यानों की झड़ी-सी लग जाया करती थी।

अकाल के कारण खाडिलकर को पुणे से बाहर जाने का अवसर मिला। उन्होंने शोलापुर व बीजापुर जिलों में दूर-दूर तक गाँवों के दौरे किए। इनमें उन्होंने अनेक भाषण दिये। सरकारी अन्याय को आगे लाकर उन्होंने जनता को अपने अधिकार का ज्ञान कराया। उनके भाषणों का लोगों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता। ऐसे प्रसंगों के चलते तिलक को उनकी चित्ताकर्षक वक्तृता तथा कार्यकुशलता का पूर्ण परिचय मिल गया।

लोकमान्य तिलक के पक्ष में शिवराम पंत परांजपे एवं काकासाहब खाडिलकर जैसे निपुण एवं तेजस्वी वक्ता थे, जो उच्च श्रेणी के देशभक्त तथा प्रभावशाली लेखक रूप में भी विख्यात थे। इन दोनों की लेखन-शैली के साथ-साथ वक्तृत्व शैली में भी अन्तर था। वक्तृत्व कला शिवराम पंत को स्वयं जयमाला पहनाती थी तो खाडिलकर उसे माला पहनाने को विवश कर देते थे। प्रभाव की दृष्टि से विचार करें तो दोनों का परिणाम एक-सा ही था। राजनीति हो या सार्वजनिक कार्य, विपक्ष को पूरी तरह ध्वस्त करने के लिए दोनों ही अपने-अपने तोपखानों एवं अस्त्रों से लैस होकर एक साथ टूट पड़ते। खाडिलकर एक जगह कहते हैं—

> "अगर आप पूछें कि खेलने या बोलने (भाषण) में जीतने के लिए मैं कौन-सा तरीक़ा अपनाता था तो मैं कहूँगा कि (टेनिस) खेल के समय 'ग्रेसफुल' तरीक़े से खेलने में मेरी रुचि नहीं होती थी—और मैं जैसे दन-दनाकर खेलता था, वैसे ही बोलता भी था। जोर से बोलना ही मेरी युक्ति रही थी। जोर से बोलो तो बोलना आ जाता है। जोरदार ढंग से कार्य करो तो कार्य सफल होता है, यह भूलना नहीं चाहिए। इसी कारण बस मैं आज तक कुछ कर पाया।"

तात्कालिक राजनीति के प्रश्नों पर बोलते समय वे नरम दलीय राजनीति का उपहास करते हुए क्षोभ से गरज उठते। विपक्ष पर मर्माघात करनेवाले शब्द तिलक से भी अधिक उन्हें याद रहते थे। तिलक का यह आचार सूत्र उन्होंने अच्छी तरह आत्म सात कर लिया था कि बिना दया-माया दिखाये विपक्ष पर प्रहार करते रहना चाहिए।

खाडिलकर ने बी०ए० में दर्शन शास्त्र विषय लिया था। भारतीय तत्त्वज्ञान तथा साधु-संतों के लिए उनके हृदय में आदर-भाव था। उनके राजनीतिक तत्त्व ज्ञान के पीछे अध्यात्म की आधार शिला थी। अपने क्रांतिकारी विचारों को जनता के सामने रखते समय वे गीता, महाभारत, रामायण आदि की सूक्तियों तथा महाराष्ट्र के संत रामदास के वचनों का भरपूर उपयोग करते थे।

पुणे में गणेशोत्सव के समय होनेवाले प्रसिद्ध व लोकप्रिय व्याख्यानों में खाडिलकर के व्याख्यानों की विशेष गणना अवश्य होती थी। उनके व्याख्यान गंभीर विषयों से सम्बद्ध होते थे। राजनीति से संबंधित विषयों पर तो वे बोलते ही थे, धार्मिक तथा वेदान्त संबंधी विषयों में उनकी और भी अधिक रुचि थी। हल्के-फुल्के विषय को हास्य विनोद से मण्डित कर श्रोताओं से तालियाँ बजवा लेना वे नहीं जानते थे।

अपने ऐतिहासिक नाटकों के पात्रों के समान स्वयं खाडिलकर भी आम सभाओं में बड़े आवेश के साथ व्याख्यान देते थे। उनकी आवाज़ में भारीपन अथवा गोलाई न थी। कभी-कभी तो आवाज फट भी जाती थी। परन्तु इस बात की वे तनिक भी चिंता नहीं करते थे। उनका व्यक्तित्व भी विशेष आकर्षक अथवा सुदर्शन न था। अत्यंत साधारण वेश-भूषा, ऊबड़-खाबड़ चेहरा तथा छोटी-छोटी आँखें। उनके वक्तृत्व को 'श्रुतिमनोहर' जैसा विशेषण लगाने का साहस कोई नहीं कर पाया था।

परन्तु उनका भाषण निस्सन्देह सदैव श्रवणीय रहता था। श्रवणीय होने के साथ वह मननीय भी होता था। विषय कोई भी हो, उसे उपयुक्त व तर्क सिद्ध ढंग से प्रस्तुत करना उनके भाषण की विशेषता थी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय 'सक्ती ची लष्कर भरती' (सेना में जबरन भरती) विषय पर उनके अनेक भाषण हुए। लोकमान्य तिलक की अध्यक्षता में भी, इस विषय पर उनका एक भाषण हुआ। इसमें उन्होंने यूनान, रोम, फ्रांस, जर्मनी और भारत इत्यादि देशों की सेना में भरती होने की पद्धतियाँ यथा—वेतन अथवा भाड़े पर सैन्य रखने से राजाओं की अनियंत्रित सत्ता कैसे बढ़ती जाती है; ऐसी सेना में छोटे दर्जे के लोगों को भरती करने से समाज की नीति एवं व्यवस्था किस प्रकार बिगड़ती जाती है, राष्ट्रीय सेना तैयार करने की आवश्यकता, बर्बर एवं निरंकुश सत्ता व किराये की सेना; राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा सेना की जोड़ी कैसे अविभाज्य होती है इत्यादि बातों का मार्मिक विवेचन किया और स्पष्ट किया कि इस अवसर पर राष्ट्रीय सेना तैयार करना क्यों आवश्यक है।

लोकमान्य तिलक की मृत्यु के पश्चात् खाडिलकर ने गाँधीजी को अपना राजनीतिक गुरु माना। श्रद्धापूर्ण अंतःकरण से उन्होंने गाँधीजी के आंदोलन को शिरोधार्य माना। इस समय महाराष्ट्र में तिलक के अनुयायियों के बीच फूट पड़ गई। खाडिलकर पर यह आरोप लगाया गया कि वे तिलक की शिक्षा को भूल गये हैं। 16 व 17 अप्रैल, 1931 को पुणे में महाराष्ट्र प्रांतीय परिषद् की सभा हुई। इसमें खाडिलकर ने अपने अध्यक्षीय भाषण में लोकमान्य तिलक के प्रति अपना आदरभाव अत्यंत दृढ़ शब्दों में व्यक्त किया। वे कहते हैं—

> "आज की प्रांतीय परिषद् का मामला अन्य समय की परिषदों से बहुत भिन्न है क्योंकि इस परिषद् में आगामी कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करनी है। मैं केवल सीधे सरल रास्ते से चलनेवाला—दूसरों के द्वारा तैयार किये गये मार्ग पर चलनेवाला—मनुष्य हूँ, यह बात आप ध्यान में रखें। ऐसे मार्ग पर चलनेवालों की जो विचार धारा होती है, मैं उसी विचार धारा का हूँ। मैं महात्मा गाँधी के अहिंसावादी, असहयोग वादी तत्त्वों का अनुयायी हूँ। लोकमान्य तिलक की सेवा करते समय मुझे जो सीख मिली है, वह मैं आजतक न तो रत्तीभर भूला और न ही मैं उनके विचारों से विचलित हुआ हूँ। लोकमान्य महाराष्ट्र को भगवान विठोबा की मूर्ति की भाँति प्रिय हैं और मुझे भी वे अपनी माता के समान प्रिय हैं—"

अपने समय के पत्रकार व राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में उनका वाचन व अनुभव विस्तृत था। किसी भी विषय पर उन्हें भाषण देने को कहिये और उस विषय का सही-सही विवेचन उनसे सुन लीजिये। आध्यात्मिक विषयों से लेकर सेना में भरती होने जैसे विविध विषयों पर उन्होंने भाषण दिये। 'मैं अब शब्दजीवी हूँ', ऐसा उन्होंने एक जगह कहा भी था और जो बिल्कुल सत्य था। राजनीतिक मंच पर भाषणों के बाद उन्होंने आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवचन देना शुरू किया।

अपने भाषणों में पौराणिक उदाहरणों का समावेश करने की उनकी प्रवृत्ति थी। इसके लिए महाभारत का दृष्टान्त उन्हें बड़ा उपयोगी मालूम होता था। अच्छे बुरे पात्रों के एकत्रित होने तथा उनके संघर्ष से निर्मित इस महान कथा में ऐसे भरपूर उदाहरण भरे पड़े हैं।

किसी विषय को प्रतिपादित करते हुए कभी कोई मार्मिक, चटपटा प्रसंग, उदाहरण अथवा दृष्टांत याद आ जाने पर वे उसे विस्तारपूर्वक तथा चित्ताकर्षक तरीके से समझाने में तन्मय हो जाते थे।

जब पुणे में, नशाबंदी आंदोलन जोरों से चल रहा था तब गरम दल पक्ष तथा सरकार के बीच इसने विवाद का रूप ले लिया। नशाबंदी के विरुद्ध सरकार का यह कहना था कि सरकार लोगों को शराब पीने को न तो बाध्य करती है और ना ही उनसे आग्रह करती है। शराब की दुकानें खुली हैं, जिसे पीनी हो वह पिये, जिसे न पीनी हो वह उस रास्ते से न जाय। बस—इस मामले में, हमने लोगों को उनके निर्णयों और आचार-विचारों की पूर्ण स्वतंत्रता दी है। शराब की दुकानें क़ानूनन बंद करना तो लोगों की स्वतंत्रता पर वार करना होगा। हम ऐसा नहीं करेंगे। और किसी ने ऐसा करने के लिए हम पर दबाव

डाला, आंदोलन किया, तो हम उनका बंदोबस्त कर सकते हैं। यह हमारा कर्त्तव्य है। इस संदर्भ में खाडिलकर के एक भाषण का उल्लेख मराठी के श्रेष्ठ साहित्कार ना० सी० फडके ने किया है।

खाडिलकर ने अपने इस भाषण में सरकार के उपर्युक्त तर्कों की कटु आलोचना तो की ही, परन्तु ऐसा करते हुए उन्हें एक बड़ा ही उपयुक्त दृष्टान्त सूझा और जिसे प्रस्तुत करते हुए वे फिर कितनी ही देर विचारों में तल्लीन हो रहे।

मद्य, मांस व मैथुन—इन तीन बुराइयों की ओर मनुष्य का स्वाभाविक खिंचाव होता है—भागवत का यह प्रसिद्ध कथन लोगों के समक्ष रखकर खाडिलकर ने उन्हें समझाया कि इन बुराइयों की रोकथाम करना क़ानून का कर्त्तव्य है। शुक्राचार्य ने मद्यपान के कारण अपना और अपने संप्रदाय का किस प्रकार विनाश कर डाला—इसका वर्णन उन्होंने बड़े प्रभावशाली व मनोरंजक ढंग से किया। वर्णन करते समय उन्हें शुक्र, इंद्र एवं रंभा की कहानी याद आ गयी। इस रूपक के आधार पर वे अपनी कल्पना का विस्तार करते गये। व्याख्यान के अंत में उन्होंने जोड़ा—

> "भरी बस्ती में शराब की दुकानें खोलकर यह कहना कि जिसकी इच्छा न हो वह न पिये वैसा ही होगा जैसा कि सुंदर युवतियों के झुंड में किसी पुरुष को भेजकर उससे कहना कि ब्रह्मचर्य पालन का तुम्हारा अधिकार तो हमने तुमसे छीना नहीं है। यह बात नशाखोर सरकार के अलावा अन्य सभी के ध्यान में आये बिना नहीं रहेगी। आज इस पुणे शहर में, प्रतिवर्ष दस लाख गैलन शराब बिक रही है। शराब पीकर उपद्रव करने के कारण प्रतिवर्ष डेढ़ हजार लोगों को दंड दिया जा रहा है। इस शहर की प्रत्येक गली में जब तक शराब की बोतलों से सजी दुकानों के रूप में रंभा लोगों के सामने खड़ी रहेगी, तब तक यही सब होता रहेगा। इसे बंद करने के लिये, जनता को ऐसा आंदोलन चलाना चाहिए कि जिसके उग्र स्वरूप को देखकर ये अप्सराएँ घबराकर, झेंपकर, उठ भागें। गरीबों को शराब दिलवाने की अपेक्षा सरकार को उन्हें अन्न उपलब्ध कराने की चिंता होनी चाहिए। परन्तु इसके बदले लोगों के सामने हाथ जोड़कर उनसे शराब न पीने की प्रार्थना करनेवाले शांतिप्रिय, सभ्य, सज्जन स्वयंसेवकों को दंड दिया जाता है यह कैसा अद्‌भुत न्याय सरकार हमारी झोली में डाल रही है। और वह भी किस लिए? लोगों की स्वतंत्रता क़ायम रखने के लिए! धिक्कार है, ऐसी स्वतंत्रता पर! धिक्कार है, ऐसी राजनीति पर! धिक्कार है ऐसे राजधर्म पर!"

कभी-कभी किसी श्रेष्ठ गायक को, गाने की मस्ती में कोई स्वर मोह लेता है तब उसी स्वर के आस पास वह तरह-तरह की तानों की मदद से उस स्वर को पुनः पुनः स्पर्श करते हुए एक अद्‌भुत, अनूठा एवं आह्लादपूर्ण वातावरण निर्मित कर देता है। व्याख्यान के प्रवाह में जब खाडिलकर को कोई दृष्टांत याद आ जाता था, पसंद आ जाता था; तब उनके वक्तृत्व द्वारा कुछ ऐसा ही रंग जम जाता था।

दार्शनिक

कहते हैं, जीवन की संध्यावेला में मनुष्य दर्शन की ओर प्रवृत्त होने लगता है। यह सत्य भी है और स्वाभाविक भी। साबरमती के कारावास से वापस आने पर खाडिलकर का झुकाव अध्यात्म की ओर हुआ। धर्म तथा अध्यात्म में उनकी रुचि पहले ही से थी। श्री दत्त भगवान् की आराधना उनके वंश में परंपरागत रूप में विद्यमान थी।

राजनीति में उन्होंने लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गाँधी को अपना गुरु माना था। इन दोनों का राजनीतिक जीवन अध्यात्म की आधारशिला पर खड़ा था। एक आर्त भक्त होने के कारण, खाडिलकर ने इन दोनों महान पुरुषों की एवं उनके अध्यात्म ज्ञान की आराधना की।

खाडिलकर ने बी. ए. में दर्शन शास्त्र का अध्ययन किया था। इसलिए भारतीय दर्शन व पाश्चात्य तत्त्वज्ञान दोनों का उन्होंने अभ्यास किया था। भारतीय तत्त्वज्ञान के लिए उनके मन में विशेष आदर भाव था। स्वातंत्र्य, समानता और भ्रातृत्व—पाश्चात्य संस्कृति के नवीन तत्त्व के रूप में उन्हें ये तीनों विशेष आकर्षक लगे। भारतीय संस्कृति के उच्च नैतिक, मानवतावादी व समाजकल्याणी तत्त्वों के साथ स्वातंत्र्य, समता और भ्रातृत्व का सुन्दर मेल उनके हृदय में हुआ। देश सेवा ही ईश्वर सेवा है, यह उनका सिद्धांत था।

खाडिलकर का संपूर्ण लेखन तत्त्व ज्ञान की ठोस नींव पर टिका हुआ है। उनके विचार व मूल्य भी इस तत्त्वज्ञान के चिंतन से निर्मित हैं। उनके नाटकों को पढ़ते समय भी यह बात ध्यान में आती है। अपने नाटकों में उन्होंने बहुत बड़ी मात्रा में पुराण कथाओं का आधार ग्रहण किया। उन कथाओं के आदर्श पात्रों का जीवन संग्राम सामने रखा। उन व्यक्तियों का तथा वर्तमान राजनीति के व्यक्तियों का रूपक प्रस्तुत करके जीवन मूल्यों के संदर्भ में समाज का मार्ग दर्शन किया।

लोकमान्य तिलक ने अपने मांडला कारावास के दिनों में 'गीतारहस्य' ग्रंथ लिखा था। पुणे वापस आने पर उन्होंने सबसे पहले खाडिलकर को यह ग्रंथ पढ़ने को दिया। क्योंकि लोकमान्य भी खाडिलकर के इस क्षेत्र के ज्ञान से परिचित थे।

खाडिलकर की पत्नी सौ० गौरकाकू के निधन की वार्त्ता सुनकर महात्मा गाँधी उनसे मिलने आए। गाँधीजी का मौन दिवस होने के कारण उन्होंने कागज़ पर सांत्वना के शब्द लिखे, जिनका भावार्थ था, 'अवंतिका बाई (गोखले) से यह समाचार मिला। आप तो स्वयं ज्ञानी हैं— यह मैं जानता हूँ; फिर आपकी सांत्वना के लिये क्या करूँ ?'

साबरमती कारावास के समय वहाँ का कुल वातावरण खाडिलकर के आध्यात्मिक चिंतन के बहुत अनुकूल लगा। सरकार ने उन्हें एकांत स्थान दिया था। जेल में उन्होंने 'ज्ञानेश्वरी' ग्रंथ का सूक्ष्म अध्ययन किया। 'ज्ञानेश्वरी' महाराष्ट्र के संतश्रेष्ठ ज्ञानेश्वर की भगवद्‌गीता पर लिखी हुई टीका है। ज्ञानेश्वर महान् योगी थे। उन्होंने ज्ञानेश्वरी में योगशास्त्र का स्वानुभवपरक विस्तृत विवेचन किया है। खाडिलकर योग का ऐसा ही अनुभव प्राप्त करना चाहते थे। अतः जेल में रहते हुए उन्होंने ध्यानयोग का बहुत गहरा अभ्यास किया।

आध्यात्मिक अनुभवों के लिए आवश्यक यम-नियमों का पालन उन्होंने पहले ही शुरू कर दिया था। जब लोकमान्य तिलक मांडले की जेल में गये, तब खाडिलकर ने ब्रह्मचर्य पालन का व्रत ले लिया था। उनकी साबरमती जेल-यात्रा से तो जैसे उनका पुनर्जन्म ही हो गया। अब उन्होंने अपने जीवन को निश्चित आध्यात्मिक दिशा दी। इस कर्म के शुभारंभ के लिए उन्होंने सांगली में, एक व्यास पीठ के रूप में, कृष्णा नदी के किनारे श्रीदत्त मंदिर बनवाया तथा उसके सामने एक छोटा सभा मंडप निर्मित करवाया। मंदिर में जयपुर के कारीगरों द्वारा बनाई गयी सुंदर त्रिमूर्ति की स्थापना की गयी।

जेल से छूटने के बाद खाडिलकर ने लोकमान्य तिलक के गीतारहस्य का गहन अध्ययन किया। इस अनुषंग में एवं बाद में, योगवाशिष्ठ एवं षड्‌दर्शन का भी सूक्ष्म अध्ययन उन्होंने किया। इसके साथ ही, उन्होंने भारतीय अध्यात्म के मूलाधार वैदिक साहित्य का विशिष्ट दृष्टि एवं विवेकपूर्ण मनीषा से अध्ययन किया।

इसके पश्चात् उनका ध्यान 'रुद्र' की ओर गया। 'रुद्र' उपनिषदों में से एक है और नित्य के जीवन-क्रम की परेशानियों से मुक्त हो जाने के आकांक्षी साधकों को इसका पठन अवश्य करना चाहिए, उन्हें यह जानकारी किसी उपनिषद् द्वारा ही मिली थी। उन्होंने 'रुद्र' का पाठ शुरू किया। अतः प्रातःकाल रुद्र का पाठ तथा दोपहर में अनुवाद तथा उस विषय पर समीक्षात्मक पुस्तकों का नियमित अध्ययन ऐसा शुरू हो गया। रुद्र के पश्चात् पुरुषसूक्त एवं ऐतरेय ईशावास्य, तैत्तिरीय आदि उपनिषद्, तथा बृहदारण्यक के याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी

संवाद, संध्यावदन, त्रिसुपर्ण, ओंकारोपासना आदि वैदिक साहित्य का पठन तथा चिंतन आरंभ हुआ।

वैदिक साहित्य के प्रति उनकी रुचि गहरी होती गई और वे वैराग्य की ओर तेज़ी से अग्रसर होने लगे। यह वैराग्य-वृत्ति कर्म की सफलता से निर्मित थी। अतः इस अवस्था में भी विरागी ऋषि का लोक कल्याणवाला मार्ग उन्होंने नहीं छोड़ा। जगदोद्धारक वैदिक तत्त्वज्ञान का प्रचार करना ही अब उनके जीवन का संकल्प बन गया। उनकी ऐसी धारणा थी कि इस तत्त्वज्ञान के आधार पर व्यक्ति का वैयक्तिक और समाज का सामुदायिक जीवन सुखी होगा।

'नवाकाळ वाडी' के अपने अधिकार में आ जाने के बाद, 'नवाकाळ' की ओरसे एक अलग गणेशोत्सव 'वाडी' में मनाया जाने लगा। इस उत्सव के अवसर पर खाडिलकर के आध्यात्मिक प्रवचन होते थे। इस प्रकार के प्रवचन देने का उन्हें पहले से ही अभ्यास था। पुणे के अनेक गणेशोत्सवों में लोगों ने उनके कितने ही व्याख्यानों का आनंद उठाया था। इन व्याख्यानों की योग्यता का स्तर गहरे अनुभवों तथा व्यापक अभ्यास के साथ, और ऊँचा होता गया। इस कार्य के लिए अब सांगली उनका मंच बन गया था।

परन्तु इतने से संतोष मानकर वे चुप नहीं बैठे। उनकी वृत्ति हमेशा लोकोन्मुख रही। आध्यात्मिक विषयों पर दिये जानेवाले व्याख्यान भी अधिक से अधिक लोगों के कानों तक पहुँचे, ऐसी उनकी इच्छा थी। इस विषय पर भाषण देने के लिये कहीं से भी प्राप्त निमंत्रण को वे आनंद के साथ स्वीकार करते थे। सातारा व शोलापुर में उन्होंने वैदिक उपनिषदों तथा शतपथ रुद्र पर ग्यारह-ग्यारह व्याख्यान दिये। सन् 1936 में नासिक के बालाजी में 'ओंकार की उपासना' विषय पर उनके सात प्रवचन हुए। इन्दौर में भी उनके भाषण हुए।

खाडिलकर को मधुमेह का शिकायत थी। भाषण के लिये होने वाले दौरों का तनाव वे सह न सके और उन्हें अर्धांग—पक्षाघात ने आ घेरा। यह 1938 का अप्रैल महीना था।

इस कठिन समय में पारिवारिक विपत्तियों ने भी खाडिलकर को बुरी तरह से घेर लिया। नियति ने जैसे उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया था। पत्नी के पैर की हड्डी टूट गई थी। एक पुत्रवधू मरणोन्मुख पड़ी थी; बेटे को मिरगी के दौरे और अपनी खुद की ऐसी विकलांग अवस्था! तपस्वी की मानो पंचाग्नि साधना चल रही थी। पक्षाघात के कारण उनकी वाणी दुर्बल हो गई थी। परन्तु उन्होंने कर्मयोग नहीं छोड़ा। उन्होंने उपनिषदों पर दिये गये अपने भाषणों को लिखकर तैयार किया। बाद में, वही भाषण **'खाडिलकरांची अध्यात्म ग्रंथमाला'** के नाम से प्रसिद्ध हुए। समाज की आवश्यकताओं का अजस्र प्रवाह चलता ही रहता है, इसलिए स्थितप्रज्ञ के समान लोकसंग्रह का कार्य सतत् चलता रहना चाहिए, ऐसा उनका विचार था।

खाडिलकर के वेद संबंधी विचार छः छोटे ग्रंथों में प्रकाशित हुए—

(1) **'खाडिलकरांचा रुद्र'**
(2) **'खाडिलकरांचे संध्यावंदन व पुरुषसूक्त'**
(3) **'खाडिलकरांचे ऐतरेय आणि ईशावास्योपनिषद्'**
(4) **'खाडिलकरांचे तैत्तरीयोपनिषद्'**
(5) **'खाडिलकरांची ओंकाराची उपासना'**
(6) **'खाडिलकरांचा याज्ञवल्क्यमैत्रेयी संवाद व त्रिसुपर्णाची शिकवणूक'**।

मनुष्य के जीवन का समाज के सामूहिक जीवन से समन्वय होकर अंततः संपूर्ण विश्व का कल्याण हो, यह वैदिक साहित्य—वेदान्त की मंगलकारी शिक्षा है; यह विचार उन्होंने अपनी इस आध्यात्मिक ग्रंथमाला द्वारा मुख्यतः समझाया है। तत्त्वज्ञान और दैनिक व्यवहार दोनों का मिलन साधने की उनकी यह प्रवृत्ति इस ग्रंथमाला के विवेचन में स्पष्ट दिखाई देती है। वैदिक साहित्य के उनके विवेचन में भोलेपन अथवा अंधश्रद्धा के लिए कोई स्थान नहीं है। इस संपूर्ण विवेचन में पारलौकिक सुख को प्राधान्य न देकर, लौकिक जीवन सुखी, संपन्न व समर्थ बनाने की संभावनाओं पर ज़ोर दिया गया है।

'खाडिलकरांची अध्यात्म ग्रंथमाला' मराठी भाषा में प्रकाशित हुई। वैदिक साहित्य की शिक्षा तथा ज्ञान सामान्य जनता तक पहुँचे, यह उनकी चाह थी। संत ज्ञानेश्वर ने इसी उद्देश्य से गीता का विवेचन मराठी में प्रस्तुत किया था। लोकमान्य तिलक ने भी इसी कारण अपना **'गीतारहस्य'** मराठी में लिखा। खाडिलकर का यह विश्वास था कि सामाजिक तथा राजनीतिक क्रांति का रास्ता लोकभाषा के खेत से होकर जाता है।

खाडिलकर ने जीवनभर अनेक प्रकार के कार्य संपन्न किये। 'केसरी' में प्रवेश करके, उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में अग्रिम पंक्ति का सेनानी बनकर महत्त्वपूर्ण कार्य पूरा किया। 'केसरी' के पत्रकार की हैसियत से काम शुरू कर, आगे चलकर 'लोकमान्य' तथा 'नवाकाळ' पत्रों द्वारा लोक शिक्षा की ज़िम्मेदारी सँभाली। महात्मा गाँधी की आध्यात्मिक राजनीति की महानता को पहचानकर उसका अनुकरण किया। नाटकों द्वारा सात्त्विक मनोरंजन के साथ-साथ उच्चतर नैतिक मानों का आदर करते हुए जनता को देशभक्ति का पाठ भी पढ़ाया। अंत में, वैदिक साहित्य द्वारा पुनः एक बार सामान्य जनता के कल्याण के लिए कार्य किया। संपूर्ण मानवी व्यवहार मंगलमय एवं सुखी हो सके, अंत में,

वे यही सोचते रहने की मनोवस्था तक जा पहुँचे थे ।

'**खाडिलकरांचा रुद्र**' में वे कहते हैं :

> "मधु (वक्ष्यामि) --जगत् में सर्वत्र मधु व्याप्त रहे
> यह हमारे अंतःकरण से प्रकट होनेवाली प्रवृत्ति है
> इस मधु का सर्वत्र प्रसार करने के लिये
> हम प्रचार करेंगे
> दूसरों को—इसका परिज्ञान देंगे
> कि यही कार्य सर्वत्र संपन्न हो
> जो ईश्वर को भी प्रिय लगे
> और इसके लिए ईश्वर हमारी रक्षा करे
> हमारे इस कार्य को देखकर हमारे पूर्वज आनंदित हों
> उनके मुँह से धन्योद्गार निकलें—
> जिनसे हमारे कार्य सुशोभित हों ।"

व्यक्ति तथा गृह-जीवन

सन् 1889 में खाडिलकर का विवाह हुआ था । उस समय उनकी आयु केवल सत्रह वर्ष की थी । उनकी पत्नी वेणुताई, सांगली के तैनातदार परिवार के श्री लागू की पुत्री थीं । वेणुताई ने पाँचवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की थी । उस समय के हिसाब से वे सुशिक्षित थीं । ससुराल में उनका नाम गौरी रखा गया ।

खाडिलकर घर में काका व बाहर काका साहब के नाम से जाने जाते थे। पत्नी गौरी को सब गौरकाकू के नाम से जानते थे ।

देश भक्ति की धुन में स्वार्थ त्याग करते हुए जनजागृति का व्रत लेने वाले पति के साथ सारा जीवन व्यतीत करना एक कठिन व्रत ही था । गौरकाकू ने इस व्रत को बड़ी निष्ठा व कुशलता से निभाया । यह सभी स्वीकार करेंगे कि काका साहब के कर्तृत्व तथा यश में उनकी अर्द्धांगिनी का भी आधा योग था ।

विवाह के पश्चात् काका साहब तुरंत ही उच्च शिक्षा के लिए पुणे चले गये थे । सांगली तथा पुणे में उन्होंने जो शिक्षा ग्रहण की, वह केवल पेट की खातिर नौकरी पाने के लिये ही नहीं । बड़े भाई की इच्छा को सम्मान देते हुए उन्होंने कुछ समय तक सांगली में शिक्षक बनकर कार्य किया । परन्तु यह उनका क्षेत्र नहीं था । अवसर पाते ही उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी । वकालत की शिक्षा उन दिनों बड़ी सम्मानित तथा ढेर सारे पैसे कमाने के लिए बड़ी उपयुक्त समझी जाती थी । काकासाहब इस शिक्षा के लिए बंबई गये । परन्तु इसे पूर्ण करने से पहले ही उन्होंने लोकमान्य तिलक के 'केसरी' में प्रवेश करके एक समर्पित जीवन का शुभारंभ कर दिया ।

खाडिलकर ने 'केसरी' से संलग्न होने का निर्णय स्वेच्छा से ही लिया । पत्नी से उन्होंने इस बारे में सलाह नहीं ली । अपने बड़े बंधु हरिपंत तात्या को उन्होंने इस बारे में बाद में पत्र द्वारा सूचित किया । हरिपंत तात्या की सम्मति मिलने से उन्हें बड़ा संतोष हुआ ।

उनकी माता तथा पत्नी की प्रतिक्रिया मिली-जुली थी । एक ओर वकालत, इज्ज त, पैसा, अधिकार आदि का मोह मन में था तो दूसरी ओर देश भक्ति का

मूल्य भी कम न था। तिलक एवं तिलक के 'केसरी' की ख्याति संपूर्ण महाराष्ट्र में फैली हुई थी। ऐसी स्थिति में तिलक ने खाडिलकर को 'केसरी' के संपादक की कुर्सी पर बिठाकर जो सम्मान दिया, उसकी महत्ता गौरकाकू समझ न पायीं हों—ऐसी बात नहीं। परन्तु अभी तो गृहस्थी नयी-नयी बसी ही थी। आम लड़कियों की तरह स्वतंत्र गृहस्थी के स्वप्न उन्होंने भी देखे होंगे ! बड़ा वेतन, भरपूर ऐश्वर्य आदि के अनुरूप सास-बहू ने योजनाएँ भी अवश्य ही बनायी होंगी ! काकासाहब के 'केसरी' में कार्य शुरू करने के कारण, पुणे में जल्दी घर बसाना संभव न था। तब वेतन भी थोड़ा ही था।

खाडिलकर के केसरी में प्रवेश के साथ राजनीतिक गतिविधियाँ तीव्रतम होने लगीं। अंग्रेज सरकार ने तिलक पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया। इससे लोकमान्य का व्यक्तित्व एक नेता के रूप में सिद्ध हो गया। दूर-दूर तक उनकी जय जयकार गूँजने लगी।

कलकत्ते में एक बार तिलक की किन्हीं माताजी से भेंट हुई। उन्होंने तिलक को यह सुझाया कि स्वराज्य-प्राप्ति के संदर्भ में नेपाल जाकर शस्त्र बनाने का प्रयत्न किया जाये। तिलक ने इस कार्य के लिए खाडिलकर को नियुक्त किया। विवाह के पश्चात् अभी उन्होंने अपना कोई घर भी नहीं बसाया था। इसका अनुमान लगाना भी कठिन ही था कि नेपाल का कार्य उन्हें कितने दिन वहाँ रोके रखेगा। पारिवारिक सुख देशभक्तों के लिए नहीं होता—यह सच ही है।

नेपाल के कार्य में विशेष सफलता नहीं मिली। काकासाहब जाल में फँसते-फँसते बचे और सही सलामत पुणे वापस पहुँच गए। मलेरिया की बीमारी के कारण उन्हें आराम के लिए सांगली आना पड़ा। इसी समय बंग विभाजन के फलस्वरूप हुए आंदोलन से सारा देश प्रज्ज्वलित हो उठा। तिलक ने खाडिलकर को वापस पुणे बुलाया।

अब कहीं जाकर सन् 1905 में, खाडिलकर ने पुणे में, गृहस्थी जमायी। गौरकाकू, माताजी व उनकी दोनों पुत्रियाँ उनके साथ रहने लगीं। 1906 व 1908 में क्रमश: उनके दो पुत्रों—यशवंत और विनायक का जन्म हुआ।

पुणे में घर बसाने के बाद, खाडिलकर के ऊपर कौटुम्बिक जिम्मेदारी बहुत बढ़ गयी थी। चूँकि पुणे में शिक्षा की व्यवस्था अच्छी थी, इसलिए उनके भतीजे व भांजे उनके पास रहकर पढ़ने लगे। गौरकाकू की दो बहनें उनके पिता की मृत्यु के बाद यहीं आकर रहने लगीं। पुत्री सौ० गंगू विवाह के पश्चात् पैर की बीमारी के कारण कई महीनों तक अपने माता-पिता के घर में ही पड़ी रही। दूसरे आने-जाने वालों का भी तांता लगा रहता था।

घर-गृहस्थी के मामले में केवल महीने में एक बार गौरकाकू के हाथ में पैसे सौंप देना, खाडिलकर अपनी जिम्मेदारी समझते थे। ये पैसे भी अधिक नहीं होते थे। इन पैसों में सारी गृहस्थी को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने की जिम्मेदारी गौरकाकू की ही होती थी। 'गृहिणी को पैसा तथा सामान बचा-बचाकर खर्च करना चाहिए'—यही उनकी नीति थी।

गृहस्थी में तंगी होने के बावजूद देश सेवा व राष्ट्रभक्ति के अलावा, उन्होंने दूसरा कोई व्यवसाय कभी-नहीं अपनाया। कभी उनके पास दो-चार सौ रुपये की बचत तक नहीं हो पायी। कठिनाई और परेशानी की घड़ी में गौरकाकू को ही निभाना पड़ता। ये परेशानियाँ कभी घर की तो कभी बाहर की हुआ करती थीं।

तिलक तथा राष्ट्रीय पक्ष के नेताओं ने लोक जागृति के लिए 'राष्ट्रमत' नामक एक नया दैनिक पत्र बंबई से प्रकाशित करने की योजना बनायी। इसके लिए 'नेशनल पब्लिशिंग कंपनी' नामक संस्था स्थापित की गयी। संस्था के लिये एक लाख रुपयों की आवश्यकता थी। चंदा इकट्ठा करते समय वे लोग खाडिलकर के पास आये। रोकड़ की रकम उनके पास बचती ही न थी। तब गौरकाकू ने अपने गहने खाडिलकर के हाथ में रख दिये और जिन्हें उन्होंने अपने मित्रों के सामने रख दिया। इससे सभी आश्चर्यचकित रह गये और गहने लौटाकर वापस चले गये। बाद में, राष्ट्रमत के लिए जमानत भरने के समय भी उन्होंने कर्ज चुकाने में योगदान दिया।

काकासाहब स्वभावत: एकांतप्रिय व्यक्ति थे। उनके दो-चार ही गिने-चुने मित्र थे। घर में भी वे किसी से ज्यादा बातें नहीं करते थे। ऊपर की मंजिल पर वे रहते थे। उनके रहते, ऊपर के कमरों में जाने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। बातचीत करने के लिए उनके दो ही अड्डे थे। एक था सदाशिव पेठ में 'ज्ञानेश्वरी' पर प्रवचन हेतु सुप्रसिद्ध श्री देशमुख का घर; दूसरा था कवडे शास्त्री का दवाखाना। कवडे शास्त्री उस समय क्रांतिकारी पक्ष के कार्यकर्ताओं में से एक थे। राजनीति विषयक चर्चाएँ उनके औषधालय में जमती थीं। देशमुख जी का घर आध्यात्मिक चर्चा का केन्द्र था। कवडे शास्त्री के औषधालय में हास्य विनोद का अड्डा खूब जमता था। हमेशा कम बोलने वाले काकासाहब यहाँ खुलकर बातचीत करते थे। कहते हैं कि शिवराम महादेव परांजपे व कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर की श्लेषोक्तियों की सदाबहार जुगलबंदी बड़ी मनोरंजक हुआ करती थी।

खाडिलकर का पहनावा सादा होता था। तिलक के समय की उनकी वेश-भूषा में, महात्मा गांधी के अनुयायी होने के पश्चात् बड़ा परिवर्तन आया। तिलक के समय उनकी पोशाक थी धोती, लंबा कोट, सिर पर सफ़ेद पगड़ी या फेटा और पैरों में जूते। धूप हो या न हो, हाथ में प्राय: छाता रहा करता।

यह छाता वे अपने कंधे पर गदा के समान रखते थे। गांधी के प्रभाव से उन्होंने खादी पहनना प्रारंभ किया। अब वे खादी की धोती, खादी की कमीज तथा बिना इस्त्री की हुई ऊँची नोक वाली खादी की टोपी पहनने लगे।

काका साहब ने बहुत लेखन कार्य किया। समाचार पत्रों का लेखन प्राय: समाचार पत्र के कार्यालय में ही होता था। परन्तु अपने अधिकांश नाटक उन्होंने घर पर ही लिखे। घर की ऊपरी मंजिल पर दीवार से लगी उनकी गद्देदार बैठक थी। गद्दे के सामने ढलान वाले ढक्कन की मेज। विद्यार्थी जिस प्रकार की कॉपियां प्रयोग में लाते हैं, वैसी ही कॉपियों में उन्होंने अपने नाटक लिखे। नाटक के प्रत्येक अंक के लिए पृथक्-पृथक् कॉपियाँ काम में लाने की उनकी पद्धति थी।

जिनके नाटकों ने जनता को दीवाना बना दिया, ऐसा यह नाटककार पड़ोस में चल रही चक्की की भुग-भुग आवाज में भी एकाग्रचित्त होकर नाटक लिखता था।

सन् 1910 में लो० तिलक की अनुपस्थिति में खाडिलकर को 'केसरी' से संबंध तोड़ना पड़ा। इस समय बड़ी कठिन परिस्थिति पैदा हो गई थी। पुणे में उनकी गृहस्थी का आकार बढ़ गया था। देश सेवा का एक माध्यम मानकर 'केसरी' में उन्होंने प्रवेश किया था। इससे प्राप्त वेतन में से पैसों की बचत होना असंभव ही था। आमदनी का अन्य साधन न होने से अब उनके सामने समस्या आ खड़ी थी। यह सत्य है कि उनके द्वारा लिखित नाटकों से उनको कुछ पैसा अवश्य मिलता था। इसी समय 'कीचकवध' नाटक पर सरकार द्वारा रोक लगा दी गई थी। अफ़वाह थी कि 'भाऊबंदकी' नाटक की रंग प्रस्तुतियाँ भी बंद कर दी जायेंगी। काका साहब के सामने समस्या आ गयी। अपने लक्ष्य को पूर्णत: अलग न करते हुए किन्तु किंचित् भिन्न प्रकार के नाटक लिखकर अपनी गृहस्थी चलाने की कल्पना काकासाहब के मन में थी। किंतु ऐसे नाटक भी यदि सरकार स्वीकार नहीं कर पायी तो ? उनके हृदय में 'कीर्तनकार' का पेशा अपनाकर घर संसार और देश की नौका चलाने की भी एक कल्पना थी किंतु 'कीर्तनकार' के लिए गायन कला आवश्यक होती है। अत: खाडिलकर ने संगीत की शिक्षा लेनी आरंभ कर दी।

संयोग से काकासाहब को 'कीर्तनकार' का पेशा अपनाने की आवश्यकता नहा पड़ी। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर के नाटकों के प्राभ्यास (रिहर्सल) करवाते समय उन्हें 'किर्लोस्कर नाटक मंडली' में प्रवेश मिला। इसी नाटकमंडली के लिए उन्होंने अपना पहला संगीत नाटक **'मानापमान'** लिखा। 'संगीत मानापमान' को शानदार सफलता मिली। काकासाहब को संगीत नाटककार के रूप में बहुत कीर्ति मिली।

काका साहब ने अपने संगीत नाटकों के गीतों की रचना स्वयं ही की थी। संगीत नाटककार के रूप में सफल होने के लिए संगीत का अध्ययन आवश्यक था ही। अत: उन्होंने अपने संगीत का अध्ययन चालू रखा। इस उम्र में संगीत का अभ्यास ! लोगों के लिए यह चर्चा एवं हँसी का विषय बन गया। परन्तु उनका निश्चय अटल था। लोगों के परिहास की ओर उन्होंने ध्यान न दिया। संगीत सीखने के विषय में लिये गये अपने निर्णय से वे तनिक भी विचलित नहीं हुए।

खाडिलकर ने अपनी संगीत शिक्षा का पाठ भास्कर बुवा बखले से लेना प्रारंभ किया। निश्चित समय पर वे भास्कर बुवा के यहाँ उपस्थित हो जाते और सामान्य छात्रों की तरह ही अनुशासन का पालन करते थे। भास्कर बुवा के सामने बैठते समय वे अपनी पगड़ी उतारकर टोपी पहन लेते। भास्कर बुवा ने उन्हें यमन, मांड, सारंग इत्यादि रागों की शिक्षा दी और कुछ सरल चीजें—गीत भजन आदि भी सिखाई। भास्कर बुवा की अनुपस्थिति में खाडिलकर को सिखाने का काम कृष्णा मास्टर करते थे। एक कम उम्र के युवक से सीखने में उन्हें कभी शर्म महसूस नहीं हुई। काकासाहब को संगीत का ज्ञान मिला। स्वयं गाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। काकासाहब के तीनों सप्तकों में विहार करनेवाले बेसुरे स्वर को भला कौन सुनता ?

खाडिलकर के अनुरोध से भास्कर बुवा ने 'भारत गायन समाज' संस्था की स्थापना की। वे स्वयं इसकी परामर्श समिति में रहे। यह संस्था बाद में बहुत सफल और प्रसिद्ध हुई।

'संगीत मानापमान' के यश के बाद **'संगीत विद्याहरण'** रंगमंच पर आने के समय खाडिलकर भाऊसाहब गोखले की बड़ी इमारत (वाडा) से 'मुंजाबा' गली की 'आळवणी की इमारत में रहने गये। यह नया निवासस्थान पहले से काफ़ी बड़ा था। सड़क की ओर ऊपर की मंजिल पर लम्बी चौड़ी बैठक थी। इस नयी बैठक में मेज, कुर्सी तथा बेंत का एक ठिगना-सा पलंग सजाया गया था। पलंग के पास ही खिड़की के सामने एक आराम कुर्सी पड़ी रहती थी।

प्रतिदिन काकासाहब जब शाम को घर लौटते तब प्राय: उनके साथ 'चित्रशाला' के व्यवस्थापक शंकरराव जोशी भी होते थे। शंकरराव आराम कुर्सी पर और काका साहब पलंग पर बैठ कर लंबे समय तक बातचीत करते रहते थे। 'किर्लोस्कर संगीत नाटक मंडली' तथा बाद में 'गंधर्व संगीत नाटक मंडली' से उनका संबंध बढ़ जाने एवं नाट्य क्षेत्र में एक सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त होने के बाद, नाट्य संस्थाओं के संचालक तथा रंगमंच के कलाकार भी उनके निवास स्थान पर आने-जाने लगे।

'केसरी' से संबंध टूट जाने पर भी, वे राष्ट्रीय पक्ष के सभासदों के

'शुक्रवार' क्लब के सभासद तो थे ही। इस क्लब की बैठक बारी-बारी से प्रत्येक सभासद के घर पर होती थी। बैठक में तत्कालीन राजनीति पर चर्चा होती थी। खाडिलकर के घर पर भी बैठक जमती थी।

'केसरी' की नौकरी छूट जाने से घर का सारा खर्च नाटक कंपनियों तथा पुस्तक विक्रेताओं से मिलनेवाले धन पर चलता था। इतने ही में बड़ी कुशलता व सुन्दरता से गृहस्थी चलाने का संपूर्ण उत्तरदायित्व सौ० गौरकाकू पर ही था। महीने में एक बार काकासाहब उन्हें पैसे दे देते और वह भी आमदनी के हिसाब से ही। इसके बाद काकासाहब को गृहस्थी के विषय में कोई भी जानकारी नहीं रहती। उनके कपड़ों से लेकर कन्या-पुत्रों की शिक्षा का भार तक सभी कुछ गौरकाकू ही सँभालती थीं।

सौ० गौरकाकू की गृहस्थी अत्यंत सुव्यवस्थित तथा सुंदर थी। घर में शिक्षा के लिए भाई व बहन के बच्चे, और अन्य लोग भी रहते थे। अपने तीन छोटे बच्चों के अतिरिक्त आने-जाने वाले कई नाते रिश्तेदार भी थे। इन सबकी वे बड़े प्रेम तथा आदर से देखभाल करती थीं। काकासाहब के लिए छोटी-मोटी सभी आवश्यक चीजों का भी वे पूरा ख्याल रखती थीं। काकासाहब प्रत्येक वस्तु निश्चित समय पर चाहते थे। स्वादिष्ट आहार बनाने का काकू को विशेष शौक़ था। नित्य बननेवाली ज्वार की रोटी भी वे इतने जतन से बनातीं कि ऊपर और नीचे के हिस्सों का फ़र्क़ समझ में नहीं आता था। दस-पांच अधिक थालियाँ रोज ही लगानी पड़ जाती थीं, परन्तु वे अकेली ही बिजली के वेग से खाना बनातीं और परोसती थीं। उनका कहना था कि घर के पुरुष एवं बच्चों की देखभाल के साथ-साथ, संबंधियों तथा मेहमानों की अच्छी तरह देखभाल करना प्रत्येक सुगृहिणी का कर्त्तव्य है।

गौरकाकू की गृहस्थी में उत्कृष्ट व्यवस्था तथा मितव्ययता—ये दो स्थायी नीतियाँ थीं। मेहमानों को वे चम्मच आड़ा करके (अर्थात् बहुत अधिक) घी परोसती थीं किंतु घर के लोगों को कभी-कभी खड़े चम्मच से घी परोसने की कठोरता भी उन्हें बरतनी पड़ती थी। इस नीति से पैसों की तथा गृहस्थी के साधनों की जो बचत हो पायी, उसका सदुपयोग काकासाहब तथा अन्य लोगों के आड़े वक्त में हुआ।

जबकि लोकमान्य तिलक मांडले के कारागृह में थे और इधर 'केसरी' से संबंध टूटा था—उस दौरान खाडिलकर की मनःस्थिति बड़ी मिली-जुली रही। **'मानापमान'** नाटक की सफलता से पैसा तथा प्रतिष्ठा दोनों मिल रहे थे। 'मानापमान' के बाद **'संगीत विद्याहरण'** द्वारा लोक शिक्षा का कार्य उन्होंने अधिक दृढ़ता से किया। फिर भी, तिलक की अनुपस्थिति और 'केसरी' से संबंध-विच्छेद —ये दोनों घटनाएँ उनके हृदय को सालती रहीं।

नाट्यक्षेत्र में जिस प्रकार सुख तथा वैभव के दिन आये, वैसे ही दुःख के भी आए। 'महाराष्ट्र नाटक मंडली' के एक सुप्रसिद्ध कलाकर, श्री भागवत ने अकस्मात् नागपुर में आत्महत्या कर ली। इससे काकासाहब को बहुत दुःख हुआ। श्री भागवत ने 'कीचकवध' तथा 'भाऊबंदकी' में क्रमशः 'कीचक' तथा 'राघोबा' की भूमिकाएँ की थीं। इन दोनों भूमिकाओं में वे अप्रतिम और कुशल अभिनय करते रहे थे, विशेषतः 'कीचक' की भूमिका में। श्री भागवत के पश्चात् 'संगीत मानापमान' के प्रमुख अभिनेता तथा भागीदार नानासाहब जोगलेकर की भी अचानक मृत्यु हो गई। 'संगीत मानापमान' में वे धैर्यधर की भूमिका अप्रतिम योग्यता से निभाते थे। संगीत के क्षेत्र में भी उन्होंने जैसे एक नया इतिहास रचा था।

जोगलेकर की मृत्यु से 'किर्लोस्कर नाटक मंडली' में वित्तीय कारणों से झगड़े शुरू हो गये। इन झगड़ों का अंत नाटक मंडली के टूटने तक हुआ। जिस 'किर्लोस्कर संगीत नाटक मंडली' के माध्यम से खाडिलकर एक संगीत नाटककार के रूप में आगे आये, उसके टूटने से खाडिलकर को भी बड़ा गहरा आघात लगा।

खाडिलकर ने इस मंडली के लोगों का पुनः मेल कराने का बहुत प्रयत्न किया। आखिर 1913 जुलाई में बालगंधर्व, टेंबे, तथा बोडस ने मिलकर अपनी स्वतंत्र संस्था—'गंधर्व नाटक मंडली' स्थापित की। मंडली का यह नाम खाडिलकर ने ही सुझाया था।

किर्लोस्कर कंपनी के भूतपूर्व मालिक शंकरराव मजुमदार ने इस नयी नाटक कंपनी पर 'मानापमान' नाटक के अधिकारों को लेकर मुक़दमा दायर कर दिया। खाडिलकर ने बीच-बचाव करके नाटक के सर्वाधिकर किर्लोस्कर मंडली के पास ही रहने दिये परन्तु नाटक को खेलने का अधिकार गंधर्व नाटक मंडली को भी दिलवा दिया।

'संगीत मानापमान', 'संगीत विद्याहरण' और बाद में 'संगीत स्वयंवर' आदि नाटक मराठी संगीत नाट्य सृष्टि में अभिनव आंदोलन ले आये। 1911 से 1917 तक के ये छः वर्ष काकासाहब और गौरकाकू के लिए अत्यंत सुख-समृद्धि वाले रहे। 1915 में उनके दोनों पुत्रों के यज्ञोपवीत संस्कार का आयोजन बड़े ठाठ-बाट से किया गया। जिसमें पत्रकार, 'राजनीतिज्ञ, नाट्य क्षेत्र के सैकड़ों मित्र-गण, नाते-रिश्तेदार सभी एकत्र हुए। स्वयं लोकमान्य तिलक तथा राष्ट्रीय पक्ष के सभासद इस समारोह में उपस्थित थे। रात्रि में, सभामंडप में गायन वादन का कलापूर्ण जलसा हुआ जिसमें भास्कर बुवा बखले, गोविंदराव टेंबे, नटवर्य बालगंधर्व, मास्टर कृष्णराव आदि ने हिस्सा लिया। इस आकांक्षा से भी हज़ारों लोग एकत्रित हुए कि काकासहाब के घर इस सुअवसर पर अवश्य उपस्थित

होना चाहिए। इन सब लोगों के लिए रात्रि का यह कार्यक्रम 'संगीत की बड़ी दावत' जैसा था !

सुख जब आता है, तब इसी प्रकार पूरी समृद्धि से आता है। काकासाहब के कौटुम्बिक जीवन में सुख और समृद्धि का यह सर्वोच्च शिखर था। ऐसा दिन उनके जीवन में दोबारा नहीं आया।

फिरभी, सुख हो या दुःख, खाडिलकर अपने ध्येय तथा कार्यनिष्ठा से कभी च्युत नहीं हुए। गुरु के रूप में लोकमान्य तिलक विशेष वंदनीय थे। इस संदर्भ में एक घटना उल्लेखनीय है। 'केसरी' कार्यालय से संबंध टूटने पर भी जब कभी खाडिलकर पुणे जाते तो छाता कंधे पर डालकर गायकवाड वाडे में जाते थे और जिस पुरानी बैठक में, जिस विशिष्ट कुर्सी पर लोकमान्य तिलक बैठा करते थे, उसके सामने खड़े होकर प्रमाण करते थे, और फिर क्षणमात्र को भी इधर-उधर बिना देखे लौट जाते थे। उनका यह क्रम अनेक वर्षों तक चलता रहा।

लोकमान्य के निधन के साथ, जब काकासाहब का 'केसरी' कार्यालय से संबंध हमेशा के लिए टूट गया। तब उनके मन में महात्मा गांधी की राजनीति के प्रति श्रद्धा व प्रेम पैदा हुआ। उनकी उत्कट इच्छा थी कि इस राजनीति का उनके द्वारा प्रचार एवं प्रसार हो। उस समय ऐसे कार्य का प्रमुख साधन समाचार पत्र ही था। अतः बंबई से सद्य:प्रकाशित 'लोकमान्य' समाचार पत्र की जिम्मेदारी उन्होंने आनंद से उठा ली। शीघ्र ही, वे अपने परिवार के साथ बंबई में आकर स्थायी रूप से बस गये।

बंबई में निवास स्थान मिलना बहुत कठिन था ! बालगंधर्व ने उनसे अनुरोध किया कि मकान मिलने तक वे नाटक कंपनी के स्थान पर ही रहें, जो उन्होंने मान लिया। बाद में, भटवाडी में उन्हें जगह मिली। वहाँ की श्रीमती अवंतिकाबाई गोखले से खाडिलकर परिवार का निकट संबंध रहा था और बाद में, यह संबंध और भी प्रगाढ़ हुआ।

महात्मा गाँधी के असहयोग आंदोलन का खाडिलकर, उनकी पत्नी तथा परिवार पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रम में काकासाहबका ज्येष्ठ पुत्र आप्पा अहमदाबाद चला गया। एक भतीजे ने पुणे के तिलक विद्यालय में प्रवेश लिया। दूसरे भतीजे ने नागपुर के शासकीय कृषि विद्यालय को छोड़कर 'लोकमान्य' संपादक समिति में कार्य शुरू किया। बंबई में खाडिलकर ने अपना निवास स्थान तीन बार बदला। जगह कम थी और लोग अधिक ! साथ ही आने-जाने वालों का ताँता लगा ही रहता था ! गौरकाकू के गृहिणीपद की यह कसौटी थी।

इसी समय दुर्भाग्य का एक और चक्र आरम्भ हुआ। पुत्री सौ० शांता ससुराल से ही बीमार होकर आयी थी। बहुत प्रयास एवं उपचार करने पर

भी कोई लाभ न हुआ। अंततः इस बीमारी में ही उसकी मृत्यु हो गयी। सौ० गौरकाकू के शोक का वर्णन कैसे किया जाय ? उनकी प्रथम पुत्री भी बीमारी की चपेट में आकर और बहुत घोर कष्ट सहकर मरी थी। अब यह दूसरा आघात था।

इस आघात में गौरकाकू को जिसने सँभाला वह था, गांधीजी का चरखा ! महात्मा गांधी के इस नये आंदोलन से घर के सब लोगों ने, विशेषतः खाडिलकर व गौरकाकू ने खादी-व्रत अपनाया। सूत कातने की दीक्षा काकू को अवंतिका बाई गोखले द्वारा मिली थी। इसके बाद वे नियमित रूप से सूत कातती थीं। सौ० गौरकाकू ने महात्मा गाँधी के बुनियादी कार्यक्रम में सक्रिय योगदान देना प्रारंभ किया। इस प्रकार पति-पत्नी दोनों ही देश सेवा के कार्य में लग गये।

एक दिन खाडिलकर कुछ टूटी मनःस्थिति में मध्यरात्रि में घर आये। वे सीधे ऊपर के कमरे में चले गए। थोड़ी देर तक कमरे में दिया जलता रहा। फिर अंधेरा ! दूसरे दिन वे 'लोकमान्य' कार्यालय में नहीं गये। घर पर बुलावा आया। गौरकाकू आश्चर्य चकित हुई। काका जब कमरे से आये तब काकू ने प्रश्नवाचक मुद्रा में उनकी ओर देखा। काका ने शांत मुद्रा से कहा, "मैंने आज से 'लोकमान्य' का काम छोड़ दिया है।"

'लोकमान्य' छोड़ दिया ! बंबई महानगरी ! गृहस्थी की जिम्मेदारी ! काकू ने स्वाभाविक प्रश्न पूछा "आगे क्या होगा ?" तत्काल उत्तर मिला "दूसरा समाचार पत्र शुरू करना है। इसका नाम होगा 'नवाकाळ'।" और एक माह के भीतर उन्होंने अपना 'नवाकाळ' पत्र प्रकाशित करना प्रारंभ कर दिया।

खाडिलकर के इस नूतन साहस में उनके मित्रों ने बहुत मदद की। किंतु सबसे बड़ी सहायता उन्हें अपनी कर्तृत्ववान पत्नी से ही मिली, इसे स्वीकार करना होगा। संपादक के कार्यालय में तथा बाहर फैले हुए व्यापक कार्यों को सुव्यवस्थित करने में जब वे व्यस्त थे तब गृहस्थी अथवा परिवार के सदस्यों की ओर उन्हें कभी भी ध्यान देने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। यह उत्तरदायित्व गौरकाकू ने भली भाँति सँभाल लिया था। पहले भी उन्होंने गृहस्थी के सुख व दुःख के दिन बड़ी कुशलता से सँभाले थे और पति को तनिक भी चिंतित नहीं होने दिया। 'नवाकाळ' तथा बाद में निजी 'नवीन दत्तात्रय मुद्रणालय' प्रारंभ करने का साहस खाडिलकर ने किया था और इस जिम्मेदारी को सफलतापूर्वक निभाने के लिए उनका मनोबल एवं स्वास्थ्य बना रह सके, इसके लिए गौरकाकू सतत् प्रयत्नशील एवं तत्पर रहीं।

खाडिलकर के इस नये स्वतंत्र व्यवसाय के कारण घर में नाते-रिश्तेदारों तथा मेहमानों का आना-जाना और भी बढ़ गया काकासाहब के स्वभाव के अनुसार इस नवीन व्यवस्था में परिवार के साथ-साथ पूर्व परिचित तथा स्नेही

जनों की संख्या भी कम न थी। इन सबका घर पर आना जाना, ठहरना तथा विभिन्न अवसरों पर उपस्थित रहना स्वाभाविक ही था। सार्वजनिक कार्यों की दृष्टि से नेतागण भी घरपर आते रहते थे।

सौ० काकू जैसी आतिथ्यशील तथा कर्मठ गृहिणी सारी व्यवस्था सँभाल रही थी इसीलिए यह सब संभव हो सका। घर में काम करनेवाला और कोई था नहीं। नौकरों से भी थोड़ी-सी ही मदद मिल सकती थी। परन्तु अपने काम का उत्तरदायित्व उत्तम रीति से निभाने के लिए काकासाहब को आवश्यक वातावरण मिल सके, ऐसी गृहस्थी चलाना उनका कर्त्तव्य है, यह विचार उनके मन में बहुत गहरा प्रभाव डाले हुए था।

इतने कष्ट एवं परेशानी के होते हुए भी उनकी वात्सल्य-भावना और विद्यादान के प्रति आस्था प्रशंसात्मक थी। उनके निकट आने वाले किसी भी व्यक्ति को किसी वस्तु की कमी हो तो उनका मन द्रवित हो उठता था। ऐसे लोगों को वे अपने परिवार का ही सदस्य मानती थीं और शिक्षा के लिए मुक्त हस्त से सहायता भी करती थीं। उनकी यह उदारता स्नेह युक्त तथा विपुल मात्रा में होती थी।

सौ० काकू का चरखे पर सूत कातने का कौशल अब बहुत बढ़ गया था। पति को, स्वयं को, और बच्चों को अब उनके काते हुए सूत के खादी के कपड़े मिलने लगे। वे हिन्दी महिला समाज की सदस्या बन गयीं। सामाजिक आंदोलनों में भी प्रत्यक्ष योगदान देने लगीं। यह गृहस्थी ऐसी थी, जो काकासाहब की मर्यादाओं के अनुरूप 'नवाकाळ' के प्रारंभिक दिनों से ही चलती रही थी। उनका उत्साह बढ़ाने में गृहस्थी का यह योगदान अवश्य ही एक महत्त्वपूर्ण कारण रहा होगा।

वैसे तो खाडिलकर के मित्रों की संख्या कम ही थी। किंतु जितने भी थे, वे अत्यंत निकट के थे। उनके गुरु लोकमान्य तिलक के प्रति उनकी भक्ति अनन्यसाधारण थी। अपने मित्रों के प्रति उनका प्रेम भी ऐसा ही अनुपम था। जब वे साबरमती कारावास में थे, उनके परम मित्र शिवराम पंत परांजपे की मृत्यु की सूचना उनको मिली। अपनी आत्मचरित्रात्मक स्मृतियों में इस घटना द्वारा हृदय को हुए दुःख तथा वेदनाओं का चित्र उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में खींचा है—

> "उनके स्वर्गवास की सूचना मुझे जेल में ही मिल गयी। सुनकर मैं रो पड़ा। एक महान् लेखक, प्रसिद्ध वक्ता, और हमारे पक्ष का योग्य नेता नहीं रहा, इस बात का मुझे बहुत दुख हुआ। जेल जाते समय उनसे जो भेंट हुई, वही अंतिम भेंट हो गयी। सेशन कोर्ट में मुक़दमा शुरू होने से पहले वे मुझसे मिलने आये थे। मुक़दमे के बारे में थोड़ी बातचीत होने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा 'आप प्याज खाते हैं?' वे प्याज की गंध नहीं सह सकते थे और जेल में प्याज के कारण उनकी स्थिति बड़ी दुखद हो गयी थी, ऐसा स्वर्गीय बसुकाका जोशी बताते थे। उनके प्रश्न का रुख तत्काल ही मैं समझ गया और मैंने बताया 'मैं प्याज खाता हूँ।' 'तब कोई परेशानी नहीं—देशभक्त परांजपे ने बताया और हम दोनों हँसने लगे। देशभक्त परांजपे का वह हँसमुख चेहरा मुझे अब तक याद है।"

इस निवेदन में खाडिलकर के हृदय का निर्मल करुण रस वाचकों के हृदय को तत्काल छू जायगा।

नरसिंह चिंतामण केलकर किसी समय खाडिलकर के सहपाठी और उसके पश्चात् 'केसरी' कार्यालय में संपादक मित्र थे। बाद में, इन दोनों में बहुत अच्छे संबंध नहीं रहे। ऐसा होने पर भी, एक बार नाटक मंडली के निवास स्थान पर उस समय के विख्यात नट गणपत राव बोडस के मुख से केलकर के बारे में अपशब्द सुनकर काकासाहब बड़े क्रोधित हुए और नाटक मंडली के सभागार से बाहर आ गये।

महान् नीति-तत्त्वों तथा उच्च विचारों को खाडिलकर ने अपने लेखन में हमेशा स्थान दिया। परन्तु यह सब केवल लिखने के लिए नहीं था। इसी प्रकार का उदात्त जीवन जीने का उन्होंने प्रामाणिक प्रयत्न किया।

1929 में खाडिलकर पर राजद्रोह का मुक़दमा, उनको दी गई सज़ा, साबरमती कारागृह में कारावास इन सब घटनाओं का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनका स्वस्थ शरीर इन घटनाओं के परिणामस्वरूप कृश हो गया। कुरता उतारने पर उनकी हड्डियाँ गिनी जा सकती थीं। वे पहले ही गंभीर तथा मितभाषी थे। अब वे पहले से भी गंभीर और अधिक मितभाषी हो गये तथा उनका झुकाव दर्शन की ओर अधिकाधिक होने लगा। इसीलिए 'नवाकाळ' की संपादकीय जिम्मेदारी से उन्होंने अपने आप को मुक्त कर लिया। परन्तु जन शिक्षा का कार्य उन्होंने अंत तक नहीं छोड़ा। अब केवल उपकार चुकाने के लिए बचा हूँ, इसी हिसाब से वे दिन गिन रहे थे।

काकासाहब के जीवन की अंतिम घड़ियाँ दुखांत ही रहीं। प्रकृति के किस नियमानुसार अथवा ईश्वर के किस विधान के अनुसार यह हुआ, कहना कठिन है।

खाडिलकर इस समय सांगली में थे। कृष्णा नदी के किनारे दत्त मंदिर में उनके प्रवचन नियमित रूप से होते थे। एक दिन बंबई से गौरकाकू की बीमारी की खबर मिली। पैर की एड़ी में हुई थोड़ी सी तकलीफ़ (एक प्रकार

की फुंसी) इतनी बढ़ी कि पैर काटने की नौबत आ गयी। इस दुःख का वर्णन कैसे किया जाये ? पति-पत्नी जीवन रथ के दो पहिये हैं। इन पहियों को अधिक आगे-पीछे रखने से काम कैसे चलेगा ? एक-डेढ़ वर्ष के बाद ही काकासाहब को लकवा मार गया ! उधर काकू का पैर गया और इधर काकासाहब का आधा शरीर बेकार हो गया।

काकासाहब फिर भी कुछ सामान्य हो चले थे कि उनकी ज्येष्ठ बहू अकस्मात् बीमार पड़ी और कई महीनों तक कष्ट उठाकर चल बसी। गौरकाकू इस आघात को सह न सकीं। उन्हें भी लकवा मार गया। काकासाहब के द्वितीय पुत्र विनायक राव को भी कुछ वर्ष पूर्व मिरगी की बीमारी हो गयी थी। उसकी हालत घर के लोगों से देखी न जाती थी। पुत्रवधू की मृत्यु के पश्चात् विनायकराव भी चल बसे ! दुःख के ये दशावतार कोई कब तक देखे; अतः गौरकाकू भी चल बसीं !

दुखों का यह लम्बा सिलसिला जैसे काफ़ी न था इसलिए काकासाहब का लाड़ला पोता हरी उर्फ़ तात्या आंत्र-ज्वर (टाइफॉइड) के कारण मृत्यु मुख में चला गया। खाडिलकर जैसे स्थितप्रज्ञ को भी यह दुःखावेग सहना कठिन हो गया। हरी के पिता (आप्पा) के दुःख की तो सीमा ही न थी। दूसरे दिन काकासाहब ने उससे कहा "लोकमान्य तिलक का उदाहरण सामने रखो और अपना कर्त्तव्य करते रहो। इसी से दुःख का आवेग कुछ कम हो सकता है।"

केवल काकासाहब जैसा व्यक्ति ही पुत्र को ऐसा उपदेश दे सकता था।

उपसंहार

संसार की अनेक विपदाओं से झुलसे काकासाहब खाडिलकर के जीवन में अभूतपूर्व आनंद देनेवाली एक घड़ी उनके जीवन काल में ही आ गयी। 15 अगस्त, 1947 के दिन भारत स्वतंत्र हुआ ! उनके मुख से आनंदोद्गार निकले—"आज मेरी मां स्वतंत्र हुई। मेरा देश स्वतंत्र हुआ।"

सन् 1896 से देश के स्वतंत्रता संग्राम में उतरे खाडिलकर की अन्तर्दृष्टि के समक्ष संघर्ष व बलिदान का संपूर्ण इतिहास उपस्थित हुआ होगा। उस दिन बंबई नगर में अभूतपूर्व उत्सव मनाया गया। खाडिलकर ने अपने पुत्र से कहकर टैक्सी बुलवाई और बंबई के कुछ हिस्सों का चक्कर लगा आये। उस दिन वे विलक्षण आनंद व उत्साह से भरे हुए थे।

काकासाहब खाडिलकर का जीवन एक अखंड संघर्ष ही था। इस संघर्ष की कल्पना के विषय में वे 'रुद्रा' में लिखते हैं :

> "विश्व का संघर्ष अर्थात् अथक परिश्रम, देश की स्वतंत्रता के लिए होनेवाला संघर्ष, तथा व्यक्ति का अपने आप से आंतरिक संघर्ष—इस त्रिविधि रूपों में रुद्र देवता विश्व संघर्ष का प्रतीक है।"

जीवन में आनेवाली प्रत्येक विपत्ति उनके दार्शनिक मन के लिए नित नये पाठ के रूप में काम आयी।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के थोड़े ही दिनों बाद उनकी इहलोक-यात्रा समाप्त हुई। 26 अगस्त का दिन उगा और फिर अस्त हुआ। रात्रि में उनकी नींद खुली। थोड़ी मितली-सी आ रही थी। डॉक्टर आये और उन्होंने नाड़ी देखी। कोई विशेष बात नहीं लगी। परन्तु उनका हृदय अब अत्यंत कमजोर हो चला था। थकान मिटाने के लिये वे थोड़ी देर लेटे रहे और कुछ ही क्षणों में अत्यंत शांतिपूर्वक उन्होंने शरीर त्याग दिया। जीवन ज्योति बुझ गयी। किसी योगी को शोभा देने योग्य मृत्यु उन्हें प्राप्त हुई।

कर्मयोग के मार्ग द्वारा कर्त्तव्य पालन करते हुए कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर समाधिस्थ हुए ! मुनिवर बन गये ! देशप्रेम व त्याग की वृत्तियां बचपन से

ही उनके अंदर घर कर गयी थीं। उनका शरीर दृढ़ता तथा वीरवृत्ति से ही बना था; इसीलिए लोकमान्य के कार्यों में तथा महात्मा गाँधी के आंदोलन में वे वीरता से कूद पड़े और देशसेवा के कठिन व्रत का आजीवन पालन करते रहे। नाटकों का निर्माण भी उन्होंने जनजागृति व ऊँचे आदर्शों की रक्षा के लिए किया। पत्रकार की आजीविका अपनायी, वह भी देशसेवा तथा लोककल्याण के लिए। सजाएँ काटीं, वह भी देश के लिए। देशसेवा की अर्चना करते-करते वे विश्व कल्याण के स्वप्न में निमग्न हो गये थे। वेदांत की शिक्षा द्वारा विश्व कल्याण के ये स्वप्न साकार हो सकेंगे, इसी का चिंतन करते हुए वे स्वयं विश्वरूप में विलीन हो गये!

सूची

कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर से संबंधित महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की सूची :

1. देशभक्त कृष्णाजी प्रभाकर उर्फ काकासाहेब खाडिलकर यांचे चरित्र	काशिनाथ हरी खाडिलकर
2. नाट्याचार्य खाडिलकर चरित्र आणि कार्य	ना० सी० फडके
3. नाट्याचार्य कृ० प्र० खाडिलकर	न० र० फाटक
4. नाटककार खाडिलकर	पु० रा० लेले
5. नाटककार खाडिलकर—एक अभ्यास	वा० ल० कुलकर्णी
6. खाडिलकरांच्या नाट्यकृति	ना० सी० फडके
7. खाडिलकरांची नाट्यसृष्टी	वसंत शांताराम देसाई
8. खाडिलकरांचा लेखसंग्रह (भाग 1 व 2)	यशवंत कृष्ण खाडिलकर (प्रकाशक/मुद्रक)
9. खाडिलकर स्मरणी	यशवंत कृष्ण खाडिलकर (संग्राहक)
10. राजकीय चळवळ व मराठी नाट्यसृष्टी	ना० कृ० शनवारे
11. नाट्याचार्य खाडिलकरांची नाट्यकला	नीळकंठ यशवंत खाडिलकर

भारतीय साहित्य के निर्माता

भारतीय साहित्य के इतिहास-निर्माण की दीर्घ यात्रा में जिन महान् प्राचीन अथवा अर्वाचीन प्रतिभाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है, उनका परिचय सामान्य पाठकों तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस पुस्तकमाला का प्रकाशन आरम्भ किया गया है। इसके अन्तर्गत अब तक हिन्दी में निम्नांकित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं :

लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ	हेम बरुआ
बंकिमचन्द्र चटर्जी	सुबोधचन्द्र सेनगुप्त
बुद्धदेव बसु	आलोकरंजन दासगुप्त
चण्डीदास	सुकुमार सेन
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	हिरण्मय बनर्जी
जीवनानन्द दास	चिदानन्द दासगुप्त
काज़ी नज़रुल इस्लाम	गोपाल हालदार
महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर	नारायण चौधुरी
माणिक बन्द्योपाध्याय	सरोजमोहन मित्र
माईकेल मधुसूदन दत्त	अमलेन्दु बोस
प्रमथ चौधुरी	अरुणकुमार मुखोपाध्याय
राजा राममोहन राय	सौम्येन्द्रनाथ टैगोर
ताराशंकर बन्द्योपाध्याय	महाश्वेता देवी
श्रीअरविन्द	मनोज दास
सरोजिनी नायडू	पद्मिनी सेनगुप्त
तरुदत्त	पद्मिनी सेनगुप्त
गोवर्धनराम	रमणलाल जोशी
मेघाणी	वसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी
नानालाल	उमेदभाई मणियार
नर्मदाशंकर	गुलाबदास ब्रोकर
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	मदन गोपाल
बिहारी	बच्चन सिंह
देवकीनन्दन खत्री	मधुरेश
घनानन्द	लल्लन राय
हरिऔध	मुकुन्ददेव शर्मा
जयशंकर प्रसाद	रमेशचन्द्र शाह
जायसी	परमानन्द श्रीवास्तव
कबीर	प्रभाकर माचवे
केशवदास	जगदीश गुप्त
महावीरप्रसाद द्विवेदी	नन्दकिशोर नवल
नन्ददुलारे वाजपेयी	प्रेमशंकर
प्रेमचन्द	प्रकाशचन्द्र गुप्त
राहुल सांकृत्यायन	प्रभाकर माचवे
रैदास	धर्मपाल मैनी
श्यामसुन्दर दास	सुधाकर पाण्डेय
सुभद्रा कुमारी चौहान	सुधा चौहान
यशपाल	कमला प्रसाद
बी० एम० श्रीकंठय्य	ए० एन० मूर्तिराव
बसवेश्वर	एच० थिप्पेरुद्रस्वामी
विद्यापति	रमानाथ झा
ए० आर० राजराज वर्मा	के० एम० जॉर्ज
चन्दु मेनन	टी० सी० शंकर मेनन
कुमारन् आशान	के० एम० जॉर्ज
महाकवि उल्लूर	सुकुमार अषिकोड
वल्लत्तोल	बी० हृदयकुमारी
वत्सकवि	अनुराधा पोतदार
ज्ञानदेव	पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे
हरिनारायण आपटे	रामचन्द्र भिकाजी जोशी
केशवसुत	प्रभाकर माचवे
कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर	नारायण कृष्ण शनवारे
नामदेव	माधव गोपाल देशमुख
नरसिंह चिंतामण केलकर	रामचन्द्र माधव गोले
श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर	मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे
तुकाराम	भालचन्द्र नेमाडे
फ़कीरमोहन सेनापति	मायाधर मानसिंह
राधानाथ राय	गोपीनाथ महन्ती
सरलादास	कृष्णचन्द्र पाणिग्राही

भाई वीर सिंह	हरबंस सिंह
दुरसा आढ़ा	रावत सारस्वत
जाम्भोजी	हीरालाल माहेश्वरी
मुहता नैणसी	बृजमोहन जावलिया
प्रिथीराज राठौड़	रावत सारस्वत
सूर्यमल्ल मिश्रण	विष्णुदत्त शर्मा
बाणभट्ट	के० कृष्णमूर्ति
भवभूति	गो० के० भट
जयदेव	सुनीतिकुमार चटर्जी
कल्हण	सोमनाथ धर
क्षेमेन्द्र	ब्रजमोहन चतुर्वेदी
माघ कवि	चण्डिकाप्रसाद शुक्ल
सचल सरमस्त	कल्याण बू० आडवाणी
शाह लतीफ़	कल्याण बू० आडवाणी
भारती	प्रेमा नन्दकुमार
इलंगो अडिगल	मु० वरदराजन
कम्बन	एस० महाराजन
माणिक्कवाचकर	जी० वंमीकनाथन
नम्मालवार	ए० श्रीनिवास राघवन
पोतन्ना	दिवाकर्ल वेंकटावधानी
वेदम वेंकटराय शास्त्री	वेदम वेंकटराय शास्त्री (कनिष्ठ)
गुरजाड	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वीरेशलिंगम्	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वेमना	नार्ल वेंकटेश्वर राव
गालिब	मुहम्मद मुजीब